श्री राजेन्द्रसूरि-जैन ग्रन्थमाला पुष्प २१

अध्ययन-चतुष्टय।

(दशवैकालिक सूत्र के आदि के चार अध्ययन)

हिन्दी-अनुवादक—

व्याख्यान-वाचस्पति श्रीमान्—

मुनि श्रीयतीन्द्रविजयजी महाराज।

जिनको—

[illegible] श्रीमानश्रीजी, मनोहरश्रीजी

माणकश्रीजी और विनयश्रीजी आदि के-

सदुपदेश से-

सुश्राविका बाई मानकुंवरने साधु साध्वियों को

भेट देने के लिये छपाया।

[illegible]

वीर संवत् २४६१ | प्रतियाँ | विक्रम सं० १९९२
राजेन्द्रसूरि सं० २९ | ५०० | सन् १९३५ ईस्वी.

श्रीयतीन्द्रविजयजी रचित हिन्दी पुस्तकें—

१ गुणानुराग-कुलक (विस्तृत-विवेचन सहित) 1)

२ सत्यबोधभास्कर (खण्डनात्मक) I=)

३ सौगम-पृच्छा (मूलपाठ का अनुवाद) =)

४ जीवनप्रभा (श्रीराजेन्द्रसूरिजी महाराज की संक्षिप्त-जीवनी) भेट

५ पीतपटाग्रह-मीमांसा }
६ निषेधनिबन्ध } I-)

७ जिनेन्द्रगुणगानलहरी I=)

८ जन्ममरणसूतक-निर्णय (गुजराती) -)

९ भावनास्वरूपम्)

१० श्रीनाकोड़ा-पार्श्वनाथ (ऐतिहासिक)

११ तीन स्तुति की प्राचीनता भेट

१२ संक्षिप्त-जीवनचरित (श्रीधनचन्द्रसूरिजी महाराज का) भेट

१३ जीवभेद-निरूपण (पाठशालाओं के लिये) I-)

१४ श्रीजिनविरद-निर्णय भेट

श्रीअभिधानराजेन्द्रप्रचारक-संस्था

ठे० बजाजखाना मु० रतलाम (मालवा)

प्रस्तावना

ग्यारह अंग, बारह उपांग, छे छेद, चार मूल, दश पयन्ना, नन्दी और अनुयोगद्वार एवं पैंतालीस आगम जैनों के मान्य है, जोकि खास सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान् श्रीमहावीर-स्वामी प्ररूपित और गणधर, श्रुतकेवली, पूर्वधरबहुश्रुत गुम्फित माने जाते हैं। दशवैकालिकसूत्र उन्हीं में से साध्वाचार विषयक एक है।

इसके रचनेवाले महावीरस्वामी के चौथे पाट पर विराजमान प्रभवस्वामी के शिष्य युगप्रधानाचार्य श्रुतकेवली भगवान्

१–आचारांग १, सुयगडांग २ ठाणांग ३, समवायांग ४ भगवति ५, ज्ञाताधर्मकथा ६ उपासकदशा ७ अन्तकृद्दशा ८ अनुत्तरोपपातिक ९ प्रश्नव्याकरण १० और विपाकश्रुत ११

२–औपपातिक, रायपसेणी जीवाभिगम पन्नवणा जम्बूद्वीपपन्नत्ति चंदपन्नत्ति सूरपन्नत्ति, कप्पिया कप्पवडिंसिया पुप्फिया पुप्फचूलिया वण्हिदसा वर्तमान में कप्पिया आदि पांचों का 'निरयावलिया' नामक सूत्र है। ३–दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प व्यवहारश्रुत निशीथ जीतकल्प पंचकल्प। ४–आवश्यक दशवैकालिक उत्तराध्ययन पिंडनिर्युक्ति। ५–चउसरण आउरपच्चक्खाण भत्तपयन्ना, संथार पयन्ना, मरणविही देवेन्द्रस्तव तंदुलवयाली चंदाविज्झ गणिविज्जा जोइसकरंड ६–बनाये हुए ७–साधु और साध्वीयों के आहार विहार आदि आचार–विचारों को दिखलाने वाला।

८–उत्पाद आग्रायणीय, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद ज्ञानप्रवाद, सत्य-प्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद प्रत्याख्यानप्रवाद, विद्याप्रवाद अवन्ध्यप्रवाद (कल्याणक) प्राणावायप्रवाद, क्रियाविशाल, और लोकबिन्दुसार, इन १४ पूर्वों की विद्या का धारक 'श्रुतकेवली' कहाता है।

रहनेमि के दृष्टान्त से वान्तभोगों को छोडने का उपदेश, **तीसरे अध्ययन में**–अनाचारों को न आचरणे का उपदेश, **चौथे अध्ययन में**–षड्जीवनिकाय की जयणा, रात्रिभोजनविरमण सहित पचमहाव्रत पालन करने का और जीवदया से उत्तरोत्तर फल मिलने का उपदेश, **पाचवें अध्ययन में**–गोचरी जाने की विधि, भिक्षाग्रहण मे कल्पाऽकल्प विभाग और सदोष आहार आदि के लेने का निषेध, **छट्टे अध्ययन में**–राजा, प्रधान, कोतवाल, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सेठ, साहुकार आदि के पूछने पर साध्वाचार की प्ररूपणा, अठारह स्थानों के सेवन में साधुत्व की भ्रष्टता और साध्वाचार पालन का फल, **सातवें अध्ययन में**–सावद्य निर्वद्य भाषा का स्वरूप, सावद्य भाषाओं के छोडने का उपदेश, निर्वद्य भाषा के आचरण का फल और वाक् शुद्धि रखने की आवश्यकता, **आठवें अध्ययन में**–साधुओं का आचार विचार, षट्कायिकजीवों की रक्षा, धर्म का उपाय, कषायों को जीतने का तरीका, गुरु की आशातना न करने का उपदेश, निर्वद्य–भाषण और साध्वाचार पालन का फल, **नौवें अध्ययन में**–अबहुश्रुत (न्यून गुणवाले) आचार्य की भी आशातना न करने का उपदेश, और विनयसमाधी, श्रुतसमाधी स्थानों का स्वरूप, **दशवें अध्ययन में**–यथारूप साधु का स्वरूप और भिक्षुभाव का फल दिखलाया गया है।

इनके अलावा दशवैकालिक सूत्र में दो चूलिकाएँ भी पीछे से आचार्योंने जोड दी हैं, जोकि भगवान् श्रीसीमन्धर स्वामी से

उपलब्ध हुई हैं ऐसा टीकाकार और निर्युक्तिकारों का वचन है। पहली चूलिका में-आत्मा को संयम में स्थिर रखने के लिये अठारह स्थानों से संसार की विचित्रता का वर्णन और साधु धर्म की उत्तमता का बयान किया गया है और दूसरी चूलिका में-आसक्ति रहित विहार का स्वरूप, अनियतवास रूप चर्या के गुण तथा साधुओं का उपदेश, विहार, काल, आदि दिखलाया गया है।

इस सूत्र के ऊपर श्रीहरिभद्राचार्यकृत-शिष्यबोधिनी, नामक बड़ी टीका व अवचूरी, समयसुन्दरकृत-शब्दार्थवृत्ति नामक दीपिका आदि संस्कृत टीकाएँ भी बनी हुई हैं। संस्कृत टीकाओं के सिवाय अनेक टब्बा और भाषान्तर भी उपलब्ध हैं परन्तु वे सभी प्राचीन अर्वाचीन गुजराती-भाषा में हैं इस लिये वे गुजराती भाषा जाननेवाले साधु साध्वियों के लिये ही उपयोगी हो सकते हैं, दूसरों के लिये नहीं।

इसी त्रुटी को पूर्ण करने के लिये अब तक दशवैकालिक सूत्र का ऐसा कोई हिन्दी अनुवाद किसी के तरफ से प्रकाशित नहीं हुआ, जो सर्व-साधारण को समझने में और अध्ययन करने में सुगम, सरस तथा उपयुक्त हो। प्रस्तुत (अध्ययन-चतुष्टय नामक) किताब में श्रीदशवैकालिक सूत्र के आदिम 'दुमपुष्फिया १, सामण्णपुव्विया २, खुड्डयायारकहा ३, छज्जीवणिया ४, इन चार अध्ययनों का मूल, उनका शब्दार्थ और भावार्थ सुगम हिन्दी-भाषा में दर्ज किया गया है, जो कि संस्कृत-

टीका और टब्बा आदि के आधार से इतना सरल बना दिया गया है कि अभ्याम करनेवाले साधु साध्वियो को इनका रहस्य समझ लेने में तनिक भी सन्दिग्धता नहीं रह सकती ।

यह सूत्र साध्वाचार मूलक है, अतएव साधु साध्वियों को इसका अभ्यास कर लेना आवश्यकीय है । क्योंकि—समस्त गच्छों की मर्यादा के अनुसार इस ग्रन्थ का अभ्यास किये विना साधु साध्वी वडी दीक्षा के योग्य नहीं समझे जाते । अस्तु, यदि इस अनुवाद को साधु साध्वियोंने अपनाया तो आगे के अध्ययनों का भी अनुवाद इसी प्रकार तैयार करके यथावकाश प्रकाशित करने का उद्योग किया जायगा । अन्त में भूल चूक का मिच्छामिदुक्कड देकर विराम लिया जाता है । इति शम् ।

वीर सवत् १६९१
वसत–पचमी

मुनियतीन्द्रविजय ।
राजगढ (मालवा)

मद्गुरु–चरणवन्दन ।

हरिगीत–छद

अरिहतना सिद्धातने बहुमानथी अवलोकता,
ते कथनने अनुसार नित्ये प्रेमपूर्वक वर्त्तता,
प समितिधारी सद्गुरुने सुखद कारणे पामजो,
गुणियल गणी गुरुराज तेना चरणमा शिर नामजो ॥१॥

× × ×

करी नयन नीचा मार्गमा मग्न थईने चालता
करुणारसे थइ रसिक जे निर्दोष जतु पालता,
इर्या समिति युक्त ते गुरुने स्तवी दु ख वामजो,
गुणियल गणी गुरुराज तेना चरणमा शिर नामजो ॥२॥

× × ×

भाषा समिति साचवी जे मधुर वचनो बोलता
निर्दोष लइने आहार जे शुभ एषणा गुण तोलता,
करी भक्ति ते गुरुरत्ननी कदि त थकी न विरामजो,
गुणियल गणी गुरुराज तेना चरणमा शिर नामजो ॥३॥

× × ×

निज सर्व साधन यत्नथी जे ग्रहण करता मूकता
मल मूत्र भूमि परठवा उपयोग नहि कदि चूकता,
पाच समिति साधना गुरुपास जइ विश्रामजो,
गुणियल गणी गुरुराज तेना चरणमा शिर नामजो ॥४॥

× × ×

पापी विचारोने हरी मनगुप्तिथी सुविचारता,
कर नयन चेष्टा संहरी जे वचनगुप्ति धारता,
परिषह सही वपु गुप्तिधारक ते हृदे संभारजो,
गुणियल गणी गुरुराज तेना चरणमा शिर नामजो ॥५॥

विश्वपूज्य-श्रीविजयराजेन्द्रसूरीश्वरेभ्यो नमः ।

अध्ययन-चतुष्टय ।

(दशवैकालिकसूत्र के आदि के चार अध्ययन)

धम्मो मंगलमुक्किठ, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥ १ ॥

शब्दार्थ—(अहिंसा) जीवदया (संजमो) संयम (तवो) तप रूप (धम्मो) सर्वज्ञभाषित धर्म (मंगल) सर्व मंगल में (उक्किठ) उत्कृष्ट मंगल है (जस्स) जिस पुरुष का (मणो) मन (सया) निरन्तर (धम्मे) धर्म में लगा रहता है (तं) उसको (देवा वि) इन्द्र आदि देवता भी (नमंसंति) नमस्कार करते हैं।

—दया संयम और तप रूप जिनेश्वर-प्ररूपित धर्म सभी मंगलों में उत्कृष्ट मंगल है। जो पुरुष धर्माराधन में लगे रहते हैं उनको भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक इन चार निकाय के इन्द्रादि देवता भी वन्दना करते हैं।

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह इन पांच आश्रवों का त्याग करना, पांचों इन्द्रियों का निग्रह करना, क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों को जीतना और मन, वचन, काया इन तीन दंडों को अशुभ व्यापारों में न लगाना, ये

सतरे प्रकार का सयम है और अनशन, ऊनोदरिका, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायक्लेश संलीनता, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग, यह बारह प्रकार का तप है।

> जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रस ।
> न य पुप्फ किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पय ॥ २ ॥
> एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
> विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—(जहा) जिस प्रकार (भमरो) भँवरा (दुमस्स) वृक्ष के (पुप्फेसु) फूलों के (रस) रस को (आवियइ) थोडा २ पीता है (य) परन्तु (पुप्फ) फूल को (किलामेइ) पीडा (न) नहीं देता (य) और (सो) वह भँवरा (अप्पय) अपनी आत्मा को (पीणेइ) तृप्त कर लेता है। (एमेए) इसी प्रकार (मुत्ता) बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित (जे) जो (लोए) ढाई द्वीप—समुद्रप्रमाण मनुष्य

---

१ आहार का छोड़ना २ कमती कवल लेना ३ धीरे धीरे आहार आदि को घटाना ४ विगय का छोड़ना ५ लोंच आतापना आदि करना ६ पाचों इन्द्रियों को वश में रखना ७ पापों की आलोयणा लेना ८ निष्कपटरूप से अभ्युत्थान आदि बर्ताव रखना ९ गुरु आदि की सेवा करना, १० पढ़े हुए ग्रन्थों की गुणी करना या सूत्रों को वाचना ११ पिण्डस्थ पदस्थ रूपस्थ रूपातीत आदि, १२ नियमित समय के लिये काया को वोसिराना (शरीर की मूर्छा उतार देना)

१३ धन धान्य क्षेत्र वास्तु रूप्य सुवर्ण कुप्य, द्विपद चतुष्पद, यह नौ प्रकार का बाह्य और मिथ्यात्व पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद हास्य रति अरति भय शोक जुगुप्सा क्रोध मान माया लोभ यह चौदह प्रकार का अभ्यन्तर परिग्रह है।

क्षेत्र में विचरने वाले (समणा) महार तपस्वी (साहुणो) साधु (संति) हैं, वे (पुप्फेसु) फूलों में (विहगमा) भँवरा के (व) समान (दाणभत्तेसणे) गृहस्थों से दिये हुए आहार आदि की गवेषणा में (रया) रत हैं ।

— जिस प्रकार भँवरा वृक्षों के फूलों का थोडा थोडा रस पीकर अपनी आत्मा को तृप्त कर लेता है लेकिन् फूलों को किसी तरह की तकलीफ नहीं देता । इसी प्रकार ढाई द्वीपसमुद्र प्रमाण मनुष्य–क्षेत्र मे विचरनेवाले परिग्रह त्यागी–तपस्वी–साधु, लोग गृहस्थों के घरों से थोडा थोडा आहार आदि ग्रहण कर अपनी आत्मा को तृप्त कर लेते हैं परन्तु किसीको तकलीफ नहीं पहुचाते । उक्त दृष्टान्त में विशेष यह है कि–भँवरा तो विना दिये हुए ही सचित्त फूलों के रस को पीकर तृप्त होता है परन्तु साधु तो गृहस्थो के दिये हुए, अचित्त और निर्दोष आहार आदि को लेकर अपनी आत्मा को तृप्त करते हैं अत एव भँवरा से भी साधुओं में इतनी विशेषता है । यहाँ वृक्ष–पुष्प के समान गृहस्थों और भौंरे के समान साधुओं को समझना चाहिये ।

वय च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ ।
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—(वयच) हम (वित्तिं) ऐसे आहार आदि (लब्भामो) ग्रहण करेंगे, जिनमें (कोई) कोई भी जीव

---

[1] जम्बूद्वीप लवणसमुद्र धातकी खण्ड कालोदधिसमुद्र और पुष्करद्वीप का आधा भाग इस ढाई द्वीपसमुद्र प्रमाणक्षेत्र को 'मनुष्यक्षेत्र' कहते हैं ।

(नय) नहीं (उवहम्मइ) मारा जाय, (जहा) जैसे (पुप्फेसु) फूलों में (भमरा) भँवरों का गमन होता है, वैसे ही (अहागडेसु) गृहस्थोंने खुद के निमित्त बनाये हुए आहार आदि को ग्रहण करने में भी (रीयते) साधु ईर्यासमिति पूर्वक गमन करते हैं।

—' हम ऐसे आहार वगैरह ग्रहण करेंगे जिनमें स्थावर या त्रस जीवों में से किसी तरह के जीवों की हिंसा न हो ' ऐसी प्रतिज्ञा करके साधुओं को भ्रमर के समान, गृहस्थोंने जो खुद के निमित्त बनाया हुआ है उस आहार आदि में से थोडा थोडा ग्रहण करना चाहिये। जो आहार आदि साधु के निमित्त बनाये या लाये गये हैं वे साधुओं के लेने लायक नहीं, किन्तु छोड देने लायक हैं।

महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया।
नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो ' त्ति बेमि '

शब्दार्थ—(महुगारसमा) भँवरा के समान (नाणापिंडरया) गृहस्थों के घरों से नाना प्रकार के निर्दोष शुद्ध आहार आदि के ग्रहण करने में रक्त, (बुद्धा) जीव, अजीव आदि नव तत्त्वों के जाननेवाले (अणिस्सिया) कुल वगैरह के प्रतिबन्ध से रहित (दंता) इन्द्रियों को वश में रखनेवाले (जे) जो पुरुष (भवंति) होते हैं (तेण) पूर्वोक्त गुणों से वे (साहुणो) साधु (वुच्चंति) कहे जाते हैं (त्ति) ऐसा मैं (बेमि) अपनी बुद्धि से नहीं, किन्तु तीर्थंकरादि के उपदेश से कहता हूं ॥ ५ ॥

—भ्रमर के समान गृहस्थों के प्रति घरों से थोडा थोडा निर्दोष प्रासुक आहारादि लेनेवाले, धर्म अधर्म या जीव अजी-वादि तत्त्वों को जाननेवाले, अमुक कुल की ही गोचरी लेना ऐसे प्रतिबन्ध (रुकावट) से रहित और जितेन्द्रिय जो पुरुष होते हैं, वे ' साधु ' कहाते हैं।

शय्यभवाचार्य अपने दीक्षित पुत्र ' मनक ' को कहते हैं कि—हे मनक ! ऐसा मैं अपनी बुद्धि से नहीं, किन्तु तीर्थंकर, गणधर आदि महर्षियों के उपदेश से कहता हू।

इति प्रथम द्रुमपुष्पिकमध्ययन समाप्तम्।

सबन्ध—पहिले अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय धर्म प्रशसा है, साधुओं की सभी दिनचर्या धर्म-मूलक है ! वह जिनेन्द्र-शासन सिवाय अन्यत्र नहीं पाई जाती। अतएव जिनेन्द्रशासन में नव-दीक्षित साधुओं को सयम पालन करते हुए नाना उपसर्गों के आ पडने पर धैर्य रखना चाहिये, लेकिन घबरा के सयम में शिथिल नहीं होना चाहिये। इस सम्बन्ध से आये हुए दूसरे अध्ययन में सयम को धैर्य से पालने का उपदेश दिया जाता है—

कह नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ।
पए पए विसीयतो, सकप्पस्स वसगओ ॥ १ ॥

शब्दार्थ—(जो) जो साधु (कामे) काम भोगों का (न) नहीं (निवारए) त्याग करता है, वह (पए पए)

स्थान स्थान पर (विसीयन्तो) दु खी होता हुआ (संकप्पस्स) खोटे मानसिक विचारों के (वसगओ) वश होता हुआ (सामण्ण) चारित्र को (कह) किस प्रकार (कुज्जा) पालन करेगा ? (नु) किसी प्रकार पालन नहीं कर सकता।

—जो साधु विषयभोगों का त्याग नहीं करता वह जगह जगह दु ख देखता हुआ, और खोटे परिणामों के वश होता हुआ साधुपन को किसी तरह पालन नहीं कर सकता।

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइ त्ति वुच्चइ॥ २॥

शब्दार्थ—(जे) जो पुरुष (अच्छंदा) अपने आधीन नहीं ऐसे (वत्थगंध) वस्त्र, गंध (अलंकारं) अलंकार (इत्थीओ) स्त्रियाँ (य) और (सयणाणि) शयन, आसन आदि को (न) नहीं (भुंजंति) सेवन करते (से) वे पुरुष (चाइ त्ति) त्यागी (न) नहीं (वुच्चइ) कहे जाते।

—जो चीनांशुक आदि वस्त्र, चन्दन कल्क आदि गन्ध, मुकुट कुंडल आदि अलंकार, स्त्रियाँ, पल्यंक आदि शयन और आसन न मिलने पर उनका परिभोग नहीं करते वे त्यागी नहीं कहे जाते।

जे य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठिकुव्वई।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ॥ ३॥

—(जेय) जो पुरुष (कंते) मनोहर (पिए)

मन गमते (लद्धे) मिले हुए (साहीण) स्वाधीन (भोए) विषय-भोगों से (विपिट्ठिकुव्वइ) मुख फेर लेता है (य) और (चयइ) छोड़ देता है (से) वह (हु) निश्चय से (चाइ त्ति) त्यागी (वुच्चइ) कहा जाता है।

—विषय-भोगों को जो पुरुष छोड़ देता है, वही असली त्यागी कहा जाता है। यहाँ टीकाकार पूज्यपाद श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज फरमाते हैं कि—

" अत्यपरिहीणो वि मज्झे ठिओ तिण्णि लोगसाराणि अग्गी उदग महिलाओ य परिचयतो चाइ त्ति । "

धन वस्त्र आदि सामग्री से रहित चारित्रवान् पुरुष यदि लोक में सारभूत अग्नी, जल और स्त्री इन तीनों को सर्वथा छोड़ दे तो वह त्यागी कहा जाता है। क्यों कि—ससार में अपरिमित धनराशी मिलने पर भी अग्नी, जल और स्त्री का त्याग नहीं हो सकता, अतएव तीनों चीजों को छोड़नेवाला धन हीन पुरुष भी त्यागी ही है।

आयावयाही चय सोगमल्लं, कामे कमाही कमियं खु दुक्खं ।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए॥५॥

शब्दार्थ—(आयावयाही) आतापना ले (सोगमल्लं) सुकुमारपने को (चय) छोड़ (कामे) विषय वासना को (कमाही) उल्लघन कर (खु) निश्चय से (दुक्खं) दु ख का (कमिय) नाश हुआ समझ (दोसं) द्वेष विकार को (छिंदाहि) नाश कर (रागं) प्रेमराग को (विणएज्ज) दूर

फर (एव) इस प्रकार मे (सपराए) ससार में (सुही) सुखी (होहिंसि) होवेगा ।

—भगवान् फरमाते हैं कि–साधुश्रो ! यदि तुम्हें ससार में दु खों से छूट कर सुखी होने की इच्छा है, तो आतापना लो, सुकुमारता को छोड़ो, विषयवासनाओं को चित्त से हटा दो, वैर विरोध और प्रेमराग को जलाञ्जली दो। यदि ऐसा करोगे तो अवश्य दु खों का अन्त होवेगा और अनन्त सुख (मोक्ष) मिलेगा।

समाइ पेहाइ परिव्वयतो, सिया मणो निस्सरइ वहिद्धा।
न सा महं नो वि अहंपि तीसे, इचेव ताओ विणइज्ज राग ४

शब्दार्थ—(समाइ) स्व पर का समान देखनेवाली (पेहाइ) दृष्टि से (परिव्वयतो) सयम मार्ग में गमन करते हुए साधु का (मणो) मन (सिया) कदाचित् (वहिद्धा) सयमरूप घर से बाहर (निस्सरइ) निकले तो (सा) वह स्त्री (मह न) मेरी नहीं है (अह पि) मैं भी (तीसे) उस स्त्री का (नो वि) नहीं हूँ (इचेव) इस प्रकार (ताओ) उन स्त्रियों के ऊपर से (राग) प्रेमभाव को (विणइज्ज) दूर कर देवे।

—अपनी और दूसरों की आत्मा को समान देखनेवाली दृष्टि से सयमधर्म को पालन करनेवाले साधु का मन, पूर्व

---

१ अत्यत गम शिला या रेती में शयन करना, २ विविध तपस्याओं से शरार की कामलता को हटा देना

भुक्त-भोगों का स्मरण हो आने पर यदि सर्पमरूप घरसे बाहर निकले तो 'वह स्त्री मेरी नहीं है और मैं उस स्त्री का नहीं हू' इत्यादि विचार करके स्त्री आदि मोहक वस्तुओं पर-से अपन प्रेम-राग को हटा लेना चाहिये।

पक्खंदे जलियं जोइ, धूमकेउं दुरासयं।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे॥ ६॥

शब्दार्थ—(अगंधणे) अगंधन नामक (कुले) कुल मे (जाया) उत्पन्न हुए सर्प (दुरासयं) मुश्किल से भी सहन न हो सके ऐसी (जलियं) जलती हुई (धूमकेउं) धुआँ वाली (जोइ) अग्नि का (पक्खंदे) आश्रय लेते हैं, परन्तु (वंतयं) उगले हुए विष को (भोत्तुं) पीने की (नेच्छंति) इच्छा नहीं करते हैं।

—सर्पों की दो जाति हैं-गन्धन और अगन्धन। गन्धन जाति के सर्प मंत्र, जडी, बूटी आदि से खींचे जाने पर खुद दंश मारे हुए स्थान से वान्त-विष को चूस लेते हैं और अगन्धन जाति के सर्प सैंकडों मंत्र आदि प्रयोगों से आकृष्ट होने पर भी खुद दंश लगाये हुए स्थान से वान्त-विष को फिर चूस लेना ठीक न समज कर, अग्नि में प्रवेश करना उत्तम समझते हैं।

इस दृष्टान्त से साधुओं को सोचना चाहिये कि-विवेक विकल तिर्यंच विशेष सर्प भी जब अभिमान मात्र से अग्नि में

जल मरना पसन्द करते हैं, परन्तु वमन किये हुए विष को पीना ठीक नहीं समझते। इसी तरह जिनप्रवचन के रहस्यों को जानने वाले साधुओं से जिन्हों का आखिरी परिणाम ठीक नहीं ऐसे अनन्त वार भोग कर वमन किये हुए भोग किस प्रकार सेवन किये जायँ?

रहनेमि के प्रति राजिमती का उपदेश—

बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमनाथस्वामीने राज्य आदि समस्त परिभोगों का त्याग करके दीक्षा ले ली। तब रहनेमिने राजिमती की मधुरसलापन, योग्यवस्तु प्रदान आदि से परिचर्या करना शुरु की। इस गर्व से कि यदि मैं राजिमति को हर तरह से प्रसन्न रक्खूंगा तो इससे मेरा भोगाभिलाषा पूर्ण होगी? राजिमती विषय विरक्त थी, उसके हृदय भवन में निरन्तर वैराग्य भावना विलास करती थी।

राजिमती को रहनेमी के दुष्ट अध्यवसाय का पता लग गया उसने रहनेमि को समझाने की इच्छा से एक दिन शिखरिणी का पान किया। उसी अवसर में रहनेमि राजिमती के साथ विषयालाप करने के लिये आया राजिमती ने फौरन मींढल के प्रयोग से वमन करके रहनेमि को कहा कि—इस वान्त शिखरिणी का तुम पी जाओ, रहनेमिने कहा—भो सुलोचने! भला यह वान्त वस्तु कैसे पी जाय?

राजिमतीने कहा कि—यदि तुम वान्त वस्तु का पीना ठीक नहीं समझते तो भला भगवान नेमनाथस्वामीने स्पर्श-विषय

मे भोग कर वमन कीये हुए मेरे शरीर के उपभोग की वाञ्छा क्यों करते हो ? इस प्रकार की दुष्ट अभिलाषा करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? अतएव—

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो त जीवियकारणा ॥
वत इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे ॥ ७ ॥

शब्दार्थ–(अजसोकामी) अपयश की इच्छा रखने वाले हे रहनेमिन् ! (ते) तेरे पुरुषपन को (धिरत्थु) धिक्कार हो (जो) जो (त) तु (जीवियकारणा) अल्पजीवित के वास्ते (वत) वान्त भोगों के (आवेउ) पीने की (इच्छसि) इच्छा करता है, इससे (ते) तेरे को (मरण) मरना (सेय) अच्छा (भवे) होगा।

—हे रहनेमिन् ! तु वान्तभोगों को भोगने की वाञ्छा रखता है इससे तेरे को धिक्कार है अत एव तेरे को मर जाना अच्छा है, लेकिन अपयश से तुझे जीना अच्छा नहीं है। कहा भी है कि–

' वर हि मृत्यु सुविशुद्धकर्मणा, न चापि शीलस्खलितस्य जीवितम् ' उत्तम कर्म करके मर जाना अच्छा है, परन्तु शील रहित पुरुष का जीना ठीक नहीं है। क्यों कि–शीलरहित जीवन से पग पग पर दुःख और निन्दा का पात्र बनना पडता है।

राजिमती के उक्त वचनों से बोध पाकर रहनेमिने भगवान श्रीनेमिनाथस्वामी के पास दीक्षा ले ली। रहनेमि के दीक्षित होने बाद राजिमतीने भी भगवान् के पास दीक्षा ली। एकदा समय रहनेमि द्वारिका नगरी मे गोचरी लेकर भगवान के पास

जा रहा था, लेकिन रास्ते में बारिश का उपद्रव देख कर वह रैवताचल की किसी गुफा में पैठ गया—जो रास्ते के नजदीक ही थी। भाग्यवश राजिमती उसी अवसर में भगवान् नेमिनाथ स्वामी को वाद कर वापिस आ रही थी, वह भी बारिश पडने के सबब उसी गुफा में आई, जहा कि रहनेमि ठहरा हुआ था।

रास्ते में बारिश से भीग जाने से साध्वी राजिमतीने अपने शरीर के सभी कपडे गुफा में सुखा दिये। रहनेमि राजिमती के अग प्रत्यगों को देखकर कामातुर हुआ और लज्जा को छोड राजिमती से भोग करने की प्रार्थना करने लगा। राजिमतीने अपने अगों को ढाक कर शिक्षा देते हुए कहा कि—

अह च भोगरायस्स, त चऽसि अधगविण्हिणो।
मा कुले गधणा हामो, सजम निहुओ चर ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—(अह च) मैं (भोगरायस्स) उग्रसेन राजा की पुत्री हू (च) और (त) तु (अधगविण्हिणो) समुद्रविजयराजा का पुत्र (असि) है (कुले) अपने कुलों में (गधणा) अपन दानों को गन्धनजाति के सर्प समान (मा होमो) नहीं होना चाहिये (निहुओ) चित्त को स्थिर करके (सजम) चारित्र को (चर) आचरण कर।

—— भो रहनेमिन्! मैं राजा उग्रसेन की पुत्री हू और तुम राजा समुद्रविजयजी के पुत्र हो। अपना विशाल और निष्कलक कुल है। अतएव अपने को अपने अपने उत्तम कुल में विषय भोग रूप वान्त रस का पान करके गन्धन जाति के सर्पों के

समान नहीं होना चाहिये। इस लिये तुम अपने चित्त को स्थिर रखकर निर्दोष चारित्र को पालन करो।

जइ त काहिसि भाव, जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धु व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—(जइ) यदि (त) तुम (जा जा) जिन जिन (नारिओ) स्त्रियों को (दिच्छसि) देखोगे, और उनमें (भाव) रागभाव को (काहिसि) पैदा करोगे, तो (वाया विद्धु) वायुसे प्रेरित (हडो व्व) हड नामक वनस्पति के समान (अट्ठिअप्पा) तुम्हारी आत्मा चल–विचल (भविस्ससि) होवेगी।

—रहनेमिन्! जो तुम अनेक स्त्रियों को देख कर उनमें आसक्त होवोगे तो वायु से प्रेरित हड नामक वनस्पति की तरह तुम्हारी आत्मा डावॉडोल में पड़ेगी। अर्थात् जिस प्रकार हड नामक वनस्पति हवा के लगने से इतस्तत भ्रमण करती है, उसी प्रकार तुम्हारी आत्मा विषयरूप वायु से प्रेरित हो कर ससार में भ्रमण करेगी।

तीसे सो वयण सोच्चा, सजयाइ सुभासिय।
अकुसेण जहा नागो, धम्मे सपडिवाइओ ॥१०॥

शब्दार्थ—(सो) वह रहनेमी (सजयाइ) साध्वी (तीसे) राजिमती के (सुभासिअ) उत्तम (वयण) वचनों को (सोच्चा) सुन करके (जहा) जैसे (नागो) हाथी

(अकुसेण) अंकुश से ठिकाने आता है, वैसे ही (धम्मे) संयम-धर्म में (संपडिवाइओ) स्थिर हो गया।

—साध्वी राजिमती के उत्तम वचनों को सुन कर, अंकुश से जैसे हाथी ठिकाने आता है वैसे ही रहनेमी संयम-धर्म में स्थिर हो गया।

रहनेमीने राजिमती के उपदेश से भगवान नेमनाथ स्वामी के पास आलोयणा ले कर निर्दोष चारित्र पालन करना शुरू किया, जिसके प्रभाव से ज्ञानावरणीय आदि पापकर्मों का नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त किया, अन्त में वह अनन्त सुखराशी में लीन हुआ।

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसोत्तमो 'त्ति बेमि।'

शब्दार्थ—(एवं) पूर्वोक्त रीति से (संबुद्धा) बुद्धिमान् (पंडिया) वान्तभोगों के सेवन से उत्पन्न दोषों को जाननेवाले (पवियक्खणा) पापकर्म से डरनेवाले पुरुष (करंति) आचरण करते हैं, और (भोगेसु) वान्त भोगों से (विणियट्टंति) अलग होते हैं (जहा) जैसे (से) वह (पुरिसोत्तमो) रहनेमी वान्तभोगों से अलग हुआ। (त्ति बेमि) ऐसा मैं मेरी बुद्धि से नहीं कहता हूं, किन्तु महावीर स्वामी आदि के कथनानुसार कहता हूं।

—जिस प्रकार पुरुषोत्तम रहनेमीने अपनी आत्मा को वान्तभोगों से हटा कर संयम-धर्म में स्थापित की और निर्दो-

पद को प्राप्त किया, उसी प्रकार जो साधु विषयभोगों के तरफ गये हुए चित्त को पीछा खाच कर सयम-धर्म में स्थिर करेंगे, तो उनको भी रहनेमी के समान परमपद प्राप्त होवेगा।

आशका—अपने भाई की स्त्री के ऊपर विषयाभिलाष से सराग दृष्टि रखनेवाले रहनेमी को सूत्रकारने 'पुरुषोत्तम' क्यों कहा ?

इसका समाधान टीकाकार यों करते हैं कि—कर्मों की विचित्रता से रहनेमी को विषयाभिलाषा हुई परन्तु उसने दुष्ट पुरुषों के समान इच्छानुसार विषय भोग सेवन नहीं किया। प्रत्युत विषयाभिलाषा को रोक कर रहनेमीने अपनी आत्मा को सयम, धर्म में स्थिर की—इसीसे सूत्रकारने रहनेमी को 'पुरुषोत्तम' कहा है।

शय्यभवाचार्य अपने पुत्र-शिष्य मनक को कहते हैं कि हे मनक ! ऐसा मैं अपनी बुद्धि से नहीं कहता, किन्तु तीर्थंकर गणधर आदि के उपदेश से कहता हू।

इति श्रामण्यपूर्वकमध्ययन द्वितीयं समाप्तम्।

सम्बन्ध—दूसरे अध्ययन में प्रतिपाद्य विषय सयम में धैर्य रखना है, धैर्य सदाचार में ही रखना चाहिये, अनाचारों में नहीं। इस सम्बन्ध से आए हुए तीसरे अध्ययन में बावन अनाचारों का सामान्य स्वरूप और उनको छोडने का उपदेश दिखाया जाता है—

करना ५, (सिणाणे य) देशस्नान या सर्वस्नान करना ६, (गधमल्ले) चूआ, चन्दन, इत्र आदि सुगधी पदार्थ लगाना ७, पुष्पों की माला पहरना ८, (य) और (वीयणे) गर्मी हटाने के वास्ते ताड, खजूर, पत्र, कागज, वस्त्र आदि के बने हुए वींजने रखना ९,

सनिही गिहिमत्ते य, रायपिंडे किमिच्छए ।
सवाहण दतपहोयणा य, सपुच्छण देहपलोयणा य ॥३॥

शब्दार्थ—(सनिही) घी, गुड, शकर, आदि को समह करके रख छोडना १०, (गिहिमत्ते य) भोजन आदि में गृहस्थों के भाजन काम में लेना ११, (रायपिंडे) राजा के दिये हुए आहार आदि लेना १२, (किमिच्छए) क्या चाहते हो ऐसा कहनेवाले के घर स या दानशाला आदि से आहार आदि लेना १३, (सवाहण) हाड, मास, चमं, रोम आदि को सुख पहुचाने वाले तेल आदि लगाना १४, (दतपहोयणा य) दाँतों को धोकर साफ रखना, १५, (सपुच्छणे) गृहस्थों को शाता पूछना, या कुशल सबन्धी पत्र लिखना १६, (य) और (देहपलोयणा) काँच आदि में शरीर, मुख, आदि की शोभा देखना १७

अट्ठावए य नालीए, छत्तस्स य धारणट्ठाए ।
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारभ च जोइणो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—(अट्ठावए य) विसायती चोपड खेलना

१७, (नालीए) गर्गीफर, मवरन वगैरह जूआ खेलना १८, (छत्तस्स य धारणट्ठाए) रोगादि महान् कारण बिना भी छाता आदि लगाना २०, (तेगिच्छं) ज्वरादि रोग नाशक औषधि करना २१, (पाहणा पाए) पैरों में जूता, बूट, मोजा, आदि पहरना २२ (च) और (जोइणो समारंभ) अग्नि का आरंभ समारंभ करना २३

सिज्झायरपिंड च, आसदी पलियंकए।
गिहतर निसिज्जाए, गायस्सुवट्टणाणि य ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—(सिज्झायरपिंड च) उपासरा, धर्मशाला, मकान, आदि में उतरने की आज्ञा देनेवाले गृहस्थ के घर से आहार वगैरह लेना २४, (आसदीपलियंकए) चटाई, गादी, जाजम, आदि पर बैठना २५, पलंग, खाट, माची, डोली आदि पर बैठना २६, (गिहतरनिसिज्जा ए) दो घरों के बीच या उपासरा के बाहर दूसरों के घर में शयन करना २७, (य) और (गायस्सुवट्टणाणि) शरीर को कोमल या स्वच्छ बनाने के लिये पीठी आदि उबटन करना २८

गिहिणो वेयावडिय, जा य आजीववत्तिया।
तत्तानिव्वुडभोइत्त, आउरस्सरणाणि य ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—(गिहिणो) गृहस्थों की (वेयावडिय) काम काज आदि सेवा करना २९, (जा य आजीववत्तिया) और अपने जाति, कुल, शिल्प, कला आदि प्रकाशित करके आजीविका करना अर्थात् आहार आदि लेना ३० (तत्ता

निव्वुडभोइत्त) तीन उकाले विना का मिश्र जल पीना ३१, (य) और (आउरस्सरणाणि) मनोनुकूल भोजन न मिलने से गृहस्थावस्था में खाये हुए भोजन को याद करना, या रोगादिपीडित लोगों को आश्रय देना ३२

मूलए सिंगबेरे य, उच्छुखंडे अनिव्वुडे।
कंदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—(अनिव्वुडे) विना अचित्त किया हुआ (मूलए) मूला लेना ३३ (सिंगबेरे य) कच्चा=सचित्त आदा लेना ३४ (उच्छुखंडे) सभी जाति की सेलडी या उसके छील हुए टुकड़े लेना ३५, (सच्चित्ते) सचित्त (कंदे मूले य) सकरकंद, गाजर, आलू, गोभी, आदि जमीकन्द लेना ३६, (आमए) सचित्त (फले) ककडी, आम, जामफल, आदि फल लना ३७, (य) और (बीए) तिल, ऊमी, ज्वार, चना, आदि सचित्त बीज ग्रहण करना ३८

सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमालोणे य आमए।
सामुद्दे पसुखारे य, कालालोणे य आमए ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—(आमए) सचित्त (सोवच्चले) सचल नमक लेना ३९, (सिंधवे) सचित्त सेंधा नमक लेना ४०, (लोणे) सचित्त साँभर नमक लेना ४१, (रोमालोणे य) सचित्त रोमक नमक लेना ४२, (सामुद्दे) सचित्त समुद्रलोन लेना ४३, (पसुखारे य) सचित्त पाशुखार लेना ४४, (आमए) सचित्त (कालालोणे य) कालानमक लेना ४५

शब्दार्थ—(गिम्हेसु) उन्हाले में (श्रायावयंति) आतापना लेते हैं (हमंतेसु) सियाले में (अवाउडा) उघाड़ शरीर से रहते हैं (वासासु) वारिश में (पडिसंलीणा) एक जगह रह कर संयमभाव में वरतते हैं, वे साधु (संजया) संयम पालने वाले, और (सुसमाहिया) ज्ञानादि गुणों की रक्षा करने वाले हैं।

—वही साधु अपने संयमधर्म और ज्ञानादिगुणों की सुरक्षा कर सकते हैं, जो उन्हाले में आतापना लेते, सियाले में उघाड़े शरीर रहते, और वारिश में एक जगह मुकाम करके इन्द्रियों को अपने आधीन रखते हों।

परीसहरिउदंता, धूअमोहा जिइंदिया।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—(परीसहरिउदंता) परीषह रूप शत्रुओं का जीतने वाले (धूअमोहा) मोहकर्म को हटाने वाले (जिइंदिया) इन्द्रियों को जीतने वाले (महेसिणो) साधुलोग (सव्वदुक्खपहीणट्ठा) कमजन्य सभी दुःखों का नाश करने के वास्ते (पक्कमंति) उद्यम करते हैं।

—कर्मज य दुःखों को निर्मूल (नाश) करने का उद्यम वेही साधु-महर्षी कर सकते हैं, जो बाइस परीसह रूप शत्रुओं

१—क्षुधा पिपासा शीत उष्ण मशक दंशमशक अरति स्त्री चर्या, निषद्या शय्या आक्रोश, वध याचना अलाभ रोग तृणस्पर्श मल सत्कार प्रज्ञा अज्ञान दर्शन ये २२ परीषह हैं।

को, मोह और पाचों इन्द्रियों के तेईस विषयों को जीतने वाले हों।

> दुक्कराइ करित्ताण, दुस्सहाइ सहेत्तु य।
> केइऽत्थ देवलोएसु, कइ सिज्झति नीरया ॥ १४ ॥

शब्दार्थ--(दुक्कराइ) अनाचार त्याग रूप अत्यन्त कठिन साध्वाचार को (करित्ताण) पालन करके (य) और (दुस्सहाइ) मुश्किल मे सहन होने वाली आतापना आदि को (सहेत्तु) सहन करके (अत्थ) इस ससार में (केइ) कितने एक साधु (देवलोएसु) देवलोकों में जाते हैं (केइ) कितने एक साधु (नीरया) कर्मरज मे रहित हो (सिज्झति) सिद्ध होते हैं।

—साध्वाचार का पालन करके और आतापना को सहन करके कई एक साधु देवलोकों में और कई एक कर्मरज को हटा कर मोक्ष जाते हैं।

> खवित्ता पुव्वकम्माइ, सजमेण तवेण य
> सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे 'त्ति बेमि'

शब्दार्थ--(सजमेण) सतरे प्रकार के सयम से (य)

१–स्पर्शनेन्द्रिय के शीत, उष्ण, रूक्ष चिकना खुरदरा कोमल, हलका भारी ये आठ, रसनेन्द्रिय के तीखा, कडुआ कषायला खट्टा मीठा ये पाच घ्राणेन्द्रिय के सुगन्ध दुर्गन्ध ये दो चक्षुरिन्द्रिय के श्वेत नीला, पीला लाल काला ये पाच श्रोत्रेन्द्रिय के सचित्त शब्द अचित्त शब्द, मिश्र शब्द ये तीन ये सब मिलकर पाचों इन्द्रियों के २३ विषय हैं।

और (तवेण य) बारह प्रकार के तप से (पुव्वकम्माइं) बाकी रहे पूर्व-कर्मों को (खवित्ता) क्षय करके (सिद्धिमग्ग) मोक्षमार्ग को (अणुप्पत्ता) प्राप्त होनेवाले (ताइणो) स्व पर को तारनेवाले साधु (परिनिव्वुडे) सिद्धिपद को प्राप्त होते हैं (त्ति) ऐसा (बेमि) मैं अपनी बुद्धि से नहीं, किंतु तीर्थंकर आदि के उपदेश से कहता हूं।

—जो साधु देवताओं के लोकों में पैदा हुए हैं, वे वहाँ से देवसम्बन्धी भवस्थिति और देवभोगों का क्षय होने बाद चव करके आर्य कुलों में उत्पन्न होते हैं। फिर वे दीक्षा लेकर संयम पालन और विविध तपस्याओं से अवशिष्ट कर्मों का खपा करके मोक्ष चले जाते हैं।

आचार्य श्रीशय्यंभवस्वामी फरमाते हैं कि हे मनक ! ऐसा मैं अपनी बुद्धि से नहीं, किन्तु तीर्थंकर गणधर आदि महर्षियों के उपदेश से कहता हूं।

इति क्षुल्लकाचार कथा नामकमध्ययन समाप्तम्।

सम्बन्ध—तीसरे अध्ययन का प्रतिपाद्य विषय सदाचार का पालन और अनाचारों का त्याग करना है। सदाचारों का पालन षड्जीवनिकाय का स्वरूप जान कर, उसकी रक्षा किये बिना नहीं होता। इस सम्बन्ध से आये हुए चौथे अध्ययन में

---

[1] सुधर्म ईशान आदि बारह स्वर्ग सुदर्शन सुप्रति बद्ध आदि नव ग्रैवयक और विजयादि पांच अनुत्तर इन [illegible] [illegible] हुए [illegible] होती।

षड्जीवनिकाय और उसकी जयणा रखने का स्वरूप दिखाया जाता है—

सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं इह खलु छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती।

शब्दार्थ—(आउसंतेणं) हे आयुष्मन्! जम्बू! (मे) मैंने (सुयं) सुना (भगवया) भगवान्[1] ने (एवं) इस प्रकार (अक्खायं) कहा, कि (इह) इस दशवैकालिकसूत्र में तथा जैनशासन में (खलु) निश्चय से (छज्जीवणिया णामज्झयणं) षड्जीवनिका नामक अध्ययन को (समणेणं) महातपस्वी (भगवया) भगवान् (कासवेणं) काश्यपगोत्रीय (महावीरेणं) महावीरस्वामीने (पवेइया) केवलज्ञान से जान कर कहा (सुअक्खाया) बारह पर्षदा में बैठ के भले प्रकार से कहा (सुपण्णत्ता) खुद आचरण करके कहा (मे) मेरी आत्मा को (अज्झयणं) यह अध्ययन (अहिज्जिउं) अभ्यास करने के लिये (सेयं) हितकर, और (धम्मपण्णत्ती) धर्मप्रज्ञप्ति रूप है।

—पंचम गणधर श्रीसुधर्मस्वामी अपने मुख्य शिष्य जम्बूस्वामी को फरमाते हैं कि हे आयुष्मन्! यह षड्जीव-

[1] संपूर्ण ऐश्वर्य, संपूर्ण रूपराशि संपूर्ण यश कीर्ति संपूर्ण शोभा संपूर्ण ज्ञान, संपूर्ण वैराग्य इन छ वस्तुओं के धारक पुरुष को 'भगवान्' कहते हैं।

निका नामक अध्ययन काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान महावीर स्वामीने समवसरण में बैठ कर बारह परदा के सामने केवल-ज्ञान से समस्त वस्तुतत्व को अच्छी तरह देख कर प्ररूपण किया है। अतएव यह धर्मप्रज्ञप्ती रूप अध्ययन अभ्यास करने के लिये आत्म हित-कारक है।

कयरा खलु सा छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ?

शब्दार्थ—(कयरा) कौनसा (खलु) निश्चय करके (सा) यह (छज्जीवणिया णामज्झयणं) षड्जीवनिका नामक अध्ययन, जो (कासवेणं) काश्यपगोत्रीय (समणेणं) श्रमण (भगवया) भगवान् (महावीरेणं) महावीरस्वामीने (पवेइया) कहा (सुअक्खाया) शुद्ध आचरण करके कहा (सुपण्णत्ता) बारह परदा में भले प्रकार से कहा (मे) मेरी आत्मा को (अज्झयणं) यह अध्ययन (अहिज्जिउं) अभ्यास करने के लिये (सेयं) हितकारक, और (धम्मपण्णत्ती) धर्मप्रज्ञप्ति रूप है।

—जम्बूस्वामी पूछते हैं कि हे भगवन ! अध्ययन करने

---

१ राजगृही नगरी के शेठ रिषभदत्त की स्त्री धारिणी के पुत्र अन्तिम केवली जिन्होंने निन्यानवे क्रोड सोनइया और नवपरिणीत आठ स्त्रियों को छोड़ कर सोलहवर्ष की उम्र में ५२७ के परिवार से सुधर्मस्वामी के पास दीक्षा ली। और जो १६ वर्ष का गृहस्थ २० वर्ष का छद्मस्थ ४४ वर्ष का केवल पर्याय पूर्ण कर के वीरनिर्वाण के बाद ६४ वर्ष पीछे मोक्ष गये।

के लिये आत्महितकारक और धर्मप्रज्ञप्ति रूप वह कौनसा षड्जीवनिका अध्ययन है, जो काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान महावीरस्वामीने केवलज्ञान से जान के स्वयं आचरण करके और देवादि-सभा में बैठ के प्ररूपण किया है ?

इमा खलु सा छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती। तं जहा—

शब्दार्थ—(**इमा**) आगे कहे आनेवाला (**सा**) वह (**छज्जीवणिया णामज्झयणं**) षड्जीवनिका नामक अध्ययन जो (**खलु**) निश्चय करके (**कासवेणं**) काश्यपगोत्रीय (**समणेणं**) श्रमण (**भगवया**) भगवान् (**महावीरेणं**) श्रीमहावीरस्वामीने (**पवेइया**) अलौकिक प्रभाव से कहा (**सुअक्खाया**) बारह पर्षदा में बैठ के कहा (**सुपण्णत्ता**) खुद आचरण करके भले प्रकार से कहा है। (**अहिज्जिउं**) अभ्यास करने के लिये (**धम्मपण्णत्ती**) धर्मप्रज्ञप्ति रूप (**अज्झयणं**) वह अध्ययन (**मे**) मेरी आत्मा को (**सेयं**) हितकारक है (**तं जहा**) वह इस प्रकार है—

—सुधर्मस्वामी फरमाते हैं कि हे जम्बू ! धर्मप्रज्ञप्ति रूप

---

१ विविध प्रकार की तपस्या करनेवाले महान् तपस्वी को 'श्रमण' कहते है।

कोल्लाग गाँव के धम्मिल ब्राह्मण की स्त्री भद्दिला के पुत्र भगवान् के ग्यारह गणधरों में से पांचवें गणधर, जिन्होंने ५०० विद्यार्थियों के परिवार से अपापानगरीमें वीरप्रभु के पास दीक्षा ली और जो ५० वर्ष गृहस्थ ४२ वर्ष चारित्र (छद्मस्थ) तथा ८ वर्ष केवली पर्याय पाल के वीरनिर्वाण से बीसवें वर्ष मोक्ष गये।

और आत्म-हितकर आगे कहा जानेवाला वह षड्जीवनिका नामक अध्ययन, जो काश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामीने अलौकिक प्रभाव से देख, बारह परिषद् में बैठ और स्वय आचरण करके प्ररूपण किया है। वह इस प्रकार है—

पुढवीकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया।

शब्दार्थ—(पुढवीकाइया) पृथ्वी के जीव (आउकाइया) जल के जीव (तेउकाइया) अग्नी के जीव (वाउकाइया) हवा के जीव (वणस्सइकाइया) फल, फूल, पत्र, बीज, लता, कन्द, आदि वनस्पति के जीव (तसकाइया) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीव।

पुढवी चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण। आउ चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण। तेउ चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण। वाउ चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ

शब्दार्थ—(सत्थपरिणएण) ...

१–हाथ की हथेली पर रक्खा हुइ वस्तु क... क सूक्ष्म बादर भावों का केवलज्ञान स देखनेवाल।

२–अग्नीकूण म गणधर आदि १, [illegible] नऋतकूण में भवनपतिदेवियाँ ४, में भवनपतिदेव ७, ज्योतिष्कदेव ८ ... २इन

छोड कर (अन्नत्थ) दूसरी (पुढवी) पृथ्वी (चित्तमत) जीव सहित (पुढोमत्ता) अगुलाऽसख्येय भाग प्रमाण अव गाहना में जुदे जुदे (अणेगजीवा) अनेक जीववाली (अ-क्खाया) तीर्थंकरों के द्वारा कही गई है (सत्थपरिणएण) शास्त्रपरिणत जल को छोड कर (अन्नत्थ) दूसरा (आउ) जल (चित्तमत) जीव सहित (पुढोमत्ता) अगुलाऽसख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में जुदे जुदे (अणेगजीवा) अनेक जीववाला (अक्खाया) कहा गया है (सत्थपरिणएण) शस्त्र–परिणत अग्नी को छोडकर (अन्नत्थ) दूसरी (तेउ) अग्नी (चित्तमत) जीव सहित (पुढोसत्ता) अगुलाऽस-ख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में जुदे जुदे (अणेगजीवा) अनेक जीववाली (अक्खाया) कही गई है (सत्थपरिणएण) शस्त्र–परिणत वायु को छोड कर (अन्नत्थ) दूसरा (वाउ) वायु (चित्तमत) जीव सहित (पुढोसत्ता) अगुलाऽसख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में जुदे जुदे (अणेगजीवा) अनेक जीववाला (अक्खाया) कहा गया है।

वणस्सई चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण । त जहा–अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खधबीया बीयरुहा सम्मुच्छिमा तणलया वणस्सइकाइया सबीया चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण ।

शब्दार्थ—(सत्थपरिणएण) शस्त्र–परिणत वनस्पति को छोड कर (अन्नत्थ) दूसरी (वणस्सइ) वनस्पति (चि-

और आत्म-हितकर आगे कहा जानेवाला वह षड्जीवनिका नामक अध्ययन, जो काश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामीने अलौकिक प्रभाव से देव, बारह परिषदा में बैठ और स्वयं आचरण करके प्ररूपण किया है। वह इस प्रकार है—

पुढवीकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया।

शब्दार्थ—(पुढवीकाइया) पृथ्वी के जीव (आउकाइया) जल के जीव (तेउकाइया) अग्नी के जीव (वाउकाइया) हवा के जीव (वणस्सइकाइया) फल, फूल, पत्र, बीज, लता, कन्द, आदि वनस्पति के जीव (तसकाइया) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव।

पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। आउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। तेउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। वाउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं।

शब्दार्थ—(सत्थपरिणएणं) शस्त्र-परिणत पृथ्वी को

१—[illegible]

२—[illegible]

छोड कर (अन्नत्थ) दूसरी (पुढवी) पृथ्वी (चित्तमत)
जीव सहित (पुढोसत्ता) अगुलाऽसंख्येय भाग प्रमाण अव
गाहना में जुदे जुदे (अणेगजीवा) अनेक जीववाली (अ-
क्खाया) तीर्थंकरों के द्वारा कही गई है (सत्थपरिणएण)
शस्त्रपरिणत जल को छोड कर (अन्नत्थ) दूसरा (आउ)
जल (चित्तमत) जीव सहित (पुढोसत्ता) अगुलाऽसंख्येय
भाग प्रमाण अवगाहना में जुदे जुदे (अणेगजीवा) अनेक
जीववाला (अक्खाया) कहा गया है (सत्थपरिणएण)
शस्त्र-परिणत अग्नी को छोडकर (अन्नत्थ) दूसरी (तेउ)
अग्नी (चित्तमत) जीव सहित (पुढोसत्ता) अगुलाऽस
ंख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में जुदे जुदे (अणेगजीवा)
अनेक जीववाली (अक्खाया) कही गई है (सत्थपरिणएण)
शस्त्र-परिणत वायु को छोड कर (अन्नत्थ) दूसरा (वाउ)
वायु (चित्तमत) जीव सहित (पुढोसत्ता) अगुलाऽसंख्येय
भाग प्रमाण अवगाहना में जुदे जुदे (अणेगजीवा) अनेक
जीववाला (अक्खाया) कहा गया है ।

वणस्सइ चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ
सत्थपरिणएण । त जहा—अग्गबीया मूलबीया पोरबीया
खधबीया बीयरूहा समुच्छिमा तणलया वणस्सइकाइया
सबीया चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ
सत्थपरिणएण ।

शब्दार्थ—(सत्थपरिणएण) शस्त्र-परिणत वनस्पति
को छोड कर (अन्नत्थ) दूसरी (वणस्सइ) वनस्पति (चि-

समत) जीव सहित (पुढोसत्ता) अगुलाऽसख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में जुदे जुदे (अणगजीवा) अनेक जीव वाली (अक्खाया) कही गई है (त जहा) वह इस प्रकार है—(अग्गबीया) अग्रभाग में बीज वाली कोरंट आदि, (मूलबीया) मूल में बीजवाली जमीकन्द कमल आदि (पोरबीया) गाँठ में बीजवाली गाँठे आदि (खधबीया) वृक्ष शाखा प्रशाखा में बीजवाली वड़ला आदि (बीयरुहा) बीज के बोने से ऊगने वाली शाल, गेहू आदि (समुच्छिमा) सूक्ष्म बीज वाली (तणलया) तृण, लता आदि (वणस्सइकाइया) वनस्पतिकायिक (सबीया) बीजों सहित (चित्तमत) सजीव (पुढोसत्ता) अगुलाऽसख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में जुदे जुदे (अणेगजीवा) अनेक जीवोंवाले (अक्खाया) कहे गये हैं (सत्थपरिणएण) शस्त्र परिणत वनस्पति के बिना (अन्नत्थ) दूसरी सभी वनस्पति सचित्त हैं।

—सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेश्वर भगवान् महावीर स्वामीने पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, इन चारों स्थावरों में अगुल की असख्यात वें भाग की अवगाहना में जुदे जुदे असख्याता जीव और वनस्पतिकाय में असख्याता तथा अनन्ता जीव प्ररूपण किये हैं। जो शस्त्रों से परिणत हो चुके हैं उनमें एक भी जीव नहीं है, अर्थात् वे अचित्त (जीव रहित) हैं ऐसा कहा है।

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा। त जहा—अडया पोयया जराउया रसया ससेइमा समुच्छिमा उब्भिया उववाइया। जेसिं केसिं चि पाणाण अभिक्कत पडिक्कत सकु-

चिय पसारिय रुय भंत तसिय पलाइय आगइ गइ विणाया ।

शब्दार्थ—(से) अब (पुण) फिर (जे) जो (इमे) प्रत्यक्ष (अणेगे) द्वीन्द्रिय आदि भेदों में अनेक (बहवे) एक एक जाति में नाना भेदवाले (तसापाणा) त्रस जीव हैं (त जहा) वे इस प्रकार हैं—(अडया) अंड से पैदा हुए पक्षी आदि (पोयया) पोत से पैदा हुए हाथी आदि (जराउया) गर्भ वेष्टन से पैदा हुए मनुष्य, गौ आदि (रसया) चलितरस में पैदा हुए जीव, (ससेइमा) जू, लीख आदि (सम्मुच्छिमा) पुरुष-स्त्री के संयोग बिना पैदा हुए पतंग आदि (उब्भिया) भूमि को फोट कर पैदा होनेवाले तीड आदि (उववाइया) देव, नारकी आदि (जेसिं) जिनमें (केसिं चि) कितने एक (पाणाणं) त्रसजीवों का (अभिकंत) सामने आना (पडिक्कंत) पीछा लोटना (संकुचिय) शरीर को भेला करना (पसारिय) शरीर को फैलाना (रुय) बोलना (भंते) भयसे इधर उधर भागना (तसिय) दुःखी होना (पलाइय) भागना (आगइ) आना (गइ) जाना इत्यादि क्रियाओं को (विणाया) जानने का स्वभाव है।

—अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक ये सभी त्रस जीव हैं और ये सामने आना, पीछा फिरना, शरीर का संकोच करना, शरीर का फैलाना, शब्द करना, भयसे भ्रमित हो इधर उधर घूमना । दुःखी होना, भागना, आना, जाना आदि क्रियाओं को जाननेवाले हैं।

जे य कीडपयगा जा य कुंथुपिपीलिया सव्वे बेइंदिया सव्वे तेइंदिया सव्वे चउरिंदिया सव्वे पचिंदिया सव्वे तिरिक्खजोणिया सव्वे नरइया सव्वे मणुआ सव्वे देवा सव्वे पाणा परमाहम्मिया। एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाउ त्ति पवुच्चइ।

शब्दार्थ—(जे य) और जो (कीडपयगा) कीट, पतग आदि (जाय) और जो (कुंथुपिपीलया) कुन्थु, कीड़ी आदि (सव्वे बेइंदिया) सभी द्वीन्द्रिय जीव (सव्वे तेइंदिया) सभी त्रीन्द्रिय जीव (सव्वे चउरिंदिया) सभी चतुरिन्द्रिय जीव (सव्वे पचिंदिया) सभी पचेन्द्रिय जीव (सव्वे तिरिक्खजोणिया) सभी तिर्यचयोनिक जीव (सव्वे नेरइया) सभी नारक जीव (सव्वे मणुआ) सभी मनुष्य (सव्वे देवा) सभी देवता (सव्वे पाणा) ये सभी प्राणी (परमाहम्मिया) परम सुख की इच्छा रखनेवाले हैं (एसो) यह (खलु) निश्चय से (छट्ठो) छठवा (जीवनिकाओ) जीवों का समुदाय (तसकाउ त्ति) त्रसकाय इस नाम से (पवुच्चइ) कहा जाता है।

—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय इन सभी जीवों का समुदाय 'त्रसकाय' कहलाता है और ये सभी जीव सुखपूर्वक जीने की इच्छा रखते हैं, ऐसा जिनेश्वर भगवन्तोंने फरमाया है।

१–त्रस और स्थावर जीवों के विशष भेद अस्मल्लिखित 'जीवभेद-निरूपण' नामक किताब से देख लेना चाहिये।

इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा नेवऽन्नेहिं दंडं समारंभाविज्जा दंडं समारंभंतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

शब्दार्थ—(इच्चेसिं) ऊपर कहे हुए (छण्हं) छठवें (जीवनिकायाणं) त्रसकाय का (दंडं) संघट्टन, आतापन आदि हिंसा रूप दंड का (सयं) खुद (नेव समारंभिज्जा) आरंभ नहीं करे (अन्नेहिं) दूसरों के पास (दंडं) संघट्टन आदि (नेव समारंभाविज्जा) आरंभ नहीं करावे (दंडं) संघट्टन आदि (समारंभंते) आरंभ करते हुए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणेज्जा) अच्छा नहीं समझे ऐसा जिनेश्वरोंने कहा, इसलिये मैं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप आरंभ को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग से (न करेमि) नहीं करूं (न कारवेमि) नहीं कराऊं (करंतं) करते हुए (अन्नं पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझूं (भंते) हे भगवन्! (तस्स) भूतकाल में किये गये आरंभ का (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयण करूं (निंदामि) आत्म-साक्षी से निंदा करूं (गरिहामि) गुरु-साक्षि से गर्हा[1] करूं (अप्पाणं) पापकारी आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं।

---

१ गर्हा-निंदा घृणा जुगुप्सा, ओघनियुक्तिटीकायाम्।

—जिनेश्वर फरमाते हैं कि साधु स्वयं त्रसकाय जीवों का संघट्टन आतापन आदि आरंभ नहीं करे, दूसरों से नहीं करावे और करनेवालों को अच्छा भी नहीं समझे। जीवन पर्यन्त साधु यह प्रतिज्ञा करे कि—

त्रसकाय का आरंभ मैं नहीं करूगा, दूसरों से नहीं करा ऊगा और करनेवालों का अनुमोदन भी नहीं करूगा। और जो आरंभ हो चूका है उसकी आलोचना, निन्दा व गर्हा कर आरंभकारी आत्मा का त्याग करता हू।

पढमे भंते! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं सव्वं भंते पाणाइवायं पच्चक्खामि। से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा नेव सयं पाणे अइवाएज्जा नेवऽन्नेहिं पाणे अइवा यावेज्जा पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा। जाव ज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पढमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं॥

शब्दार्थ—(भंते!) गुरुवर्य! (पढमे) पहले (महव्वए) महाव्रत में (पाणाइवायाओ) एकेन्द्रि आदि जीवों की हिंसा से (वेरमणं) दूर होना, भगवानने फरमाया है, अतएव (भंते) हे गुरुवर! (सव्वं) समस्त (पाणाइवायं) जीवों की हिंसा करने का (पच्चक्खामि) प्रत्याख्यान लेता हू (से) उन (सुहुमं वा[1] सूक्ष्म (बायरं वा) बादर (तसं वा)

[1]—यहाँ पर वा शब्द तज्जातीय ग्रहण करने के वास्ते है। जैसे—त्रस

त्रस (थावर वा) स्थावर (पाणे) जीवों का (सय) खुद (अइवाएज्जा) विनाश करे (नेव) नहीं (अन्नेहिं) दूसरों के पास (पाणे) त्रस स्थावर जीवों का (अइवायाविज्जा) विनाश करावे (नेव) नहीं (अइवायंते) त्रस स्थावर जीवों का विनाश करते हुए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणिज्जा) अच्छा समझे नहीं ऐसा जिनेश्वरोंने कहा, इसलिये हे गुरो ! (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त में (तिविह) कृत, कारित, अनुमोदित रूप त्रिविध हिंसा को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) त्रिविध योग से (न करेमि) नहीं करू (न कारवेमि) नहीं कराऊ (करत) करते हुए (अन्न पि) दूसरे को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नही समझू (भंते) हे प्रभो ! (तस्स) उस भूतकाल में की गई हिंसा की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करू (निंदामि) आत्म–साक्षी से निंदा करू (गरिहामि) गुरु–साक्षी से गर्हा करू (अप्पाणं) हिंसाकारी आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करू (भंते) हेमुनीश ! (पढमे) पहले (महव्वए) महाव्रत में (सव्वाओ) समस्त (पाणाइवायाओ) त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा से (वेरमणं) अलग होने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हू ।

अहावरे दोच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं

काय में सूक्ष्म–छोटे शरीरवाले कुन्थु आदि बादर–मोटे शरीरवाले गो महिष हाथी आदि, और स्थावर जीवों में सूक्ष्म वनस्पति आदि बादर पृथ्वी आदि, इसी प्रकार सूक्ष्म वनस्पति में भी सूक्ष्म बादर और पृथ्वीआदि में भी सूक्ष्म बादर की योजना स्वयं कर लेना चाहिये।

सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि । से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वइज्जा नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा मुसं वयंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । दोच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ।

शब्दार्थ—(अह) इसके बाद (भंते !) हे मुनीन्द्र ! (अवरे) आगे के (दोच्चे) दूसरे (महव्वए) महाव्रत में (मुसा वायाओ) असत्य भाषा से (विरमणं) दूर रहना भगवानने फरमाया है, अतएव (भंते) हे प्रभो ! (सव्वं) समस्त (मुसावायं) असत्य भाषण का (पच्चक्खामि) प्रत्याख्यान करता हूं (से) वह (कोहा वा) क्रोध से (लोहा वा) लोभ से (भया वा) भय से (हासा वा) हास्य से (सयं) खुद (मुसं) असत्य (वइज्जा) बोले (नेव) नहीं (अन्नेहिं) दूसरों के पास (मुसं) असत्य (वायाविज्जा) बोलावे (नेव) नहीं (मुसं) असत्य (वयंते) बोलते हुए

---

१ यहाँ पर 'वा' शब्द एक एक के समानीय भेदों का ग्रहण करने के वास्ते है । असद्भावप्रतिषेध-आत्मा पुण्य पाप स्वर्ग मोक्ष नहीं है ऐसा बोलना । असद्भावोद्भावन-आत्मा श्यामाकतन्दुल प्रमाण या सर्वगत है ऐसा आगम विरुद्ध कल्पना करना । अर्थान्तर-गधा को अश्व और अश्व को गधा कहना । गर्हा-काणे को काणा अन्धे को अन्धा कहना । ये असत्य के चार भेद हैं । क्रोधादि चारों में इनकी योजना स्वयं कर लेना चाहिये ।

(अन्नं वि) दूसरों को भी (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरों ने कहा। इसलिये (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त, मैं (तिविहं) कृत, कारित अनुमोदित रूप त्रिविध असत्य-भाषण को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग से (न करेमि) नहीं करूं (न कारवेमि) नहीं कराऊं (करतं) करते हुए (अन्नं पि) दूसरे को भी (न समणुजाणामि) अच्छा समझूं नहीं (भंते !) हे गुरो ! (तस्स) भूतकाल में बोले गये असत्य की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं (निंदामि) आत्म-साक्षी से निन्दा करूं (गरिहामि) गुरु-साक्षी से गर्हा करूं (अप्पाणं) असत्य बोलने वाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं (भंते) हे कृपानिधे ! (दोच्चे) दूसरे (महव्वए) महाव्रत में (सव्वाओ) समस्त (मुसावायाओ) असत्य-भाषण से (वेरमणं) दूर रहने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हूं।

अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिण्णादाणाओ वेरमणं सव्वं भंते ! अदिण्णादाणं पच्चक्खामि । से गामे वा नगरे वा रण्णे वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं अदिण्णं गिण्हिज्जा नेवऽन्नेहिं अदिण्णं गिण्हाविज्जा अदिण्णं गिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

तच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं ।

शब्दार्थ—(अह) इसके बाद (भंते) हे ज्ञाननिधे ! (अवरे) आगे के (तच्चे) तीसरे (महव्वए) महाव्रत में (अदिण्णादाणाओ) चोरी से (वेरमणं) दूर होना जिनेश्वरोंने कहा है, अतएव (सव्वं) सभी प्रकार की (अदिण्णादाणं) चोरी का (भंते) हे गुरो ! (पच्चक्खामि) मैं प्रत्याख्यान करता हू (से) वह (गामे वा) गाँव में (नगरे वा) नगर में (रण्णे वा) जंगल में (अप्पं वा) अल्पमूल्य-तृण आदि, (बहुं वा) बहुमूल्य स्वर्ण आदि (अणुं वा) हीरा, मणि, पुखराज, आदि (थूलं वा) काष्ठ आदि (चित्तमंतं वा) सजीव बालक, बालिका आदि (अचित्तमंतं वा) अजीव वस्त्र, आभूषण, आदि (अदिण्णं) बिना दिये हुए (सयं) खुद (गिण्हिज्जा) ग्रहण करे (नेव) नहीं, (अन्नेहिं) दूसरों के पास (अदिण्णं) बिना दिये हुए (गिण्हाविज्जा) ग्रहण करावे (नेव) नहीं, (अदिण्णं) बिना दिये हुए (गिण्हंते) ग्रहण करते हुए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरोंने कहा इसलिये (जावज्जीवाए) जीवन पर्यंत (तिविहं) कृत,

---

१ 'वा' शब्द से गाँव नगर और अल्पमूल्य बहुमूल्य आदि वस्तुओं में तज्जातीय भेदों को ग्रहण करना चाहिए। २-य। अदिण्ण से साधुयोग्य वस्तुएँ दी हुई न लेना यह मतलब है। स्वर्ण रत्न आदि तो साधुओं के अग्राह्य जो आगे दिखाया जायगा।

कारित, अनुमोदन रूप त्रिविध अदत्तादान को (मणेण) मन (वायाए) वचन (काएण) काया रूप (तिविहेण) तीन योग से (न करेमि) नहीं करूं (न कारवेमि) नहीं कराऊं (करंत) करते हुए (अन्नं पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझूं (भंते) हे गुरो ! (तस्स) भूतकाल में किये गये अदत्तादान की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं (निंदामि) आत्म—साक्षी से निंदा करूं (गरिहामि) गुरु—साक्षी से गर्हा करूं (अप्पाणं) अदत्त लेनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं (भंते) हे प्रभो ! (तच्चे) तीसरे (महव्वए) महाव्रत में (सव्वाओ) समस्त (अदिन्नादाणाओ) अदत्तादान से (वेरमणं) अलग होने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हूं ।

अहावरे चउत्थे भंते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं सव्वं भंते ! मेहुणं पच्चक्खामि । से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्खजोणियं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा नेवऽन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । चउत्थे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं ।

शब्दार्थ—(अह) इसके बाद (भंते) हे प्रभो ! (अवरे) आगे के (चउत्थे) चौथे (महव्वए) महाव्रत में (मेहुणाओ) मैथुन सेवन से (वेरमणं) अलग होना

जिनेश्वरोंने कहा है, अतएव (भंते) हे कृपानिधे ! गुरो ! (सव्वं) सभी प्रकार के (मेहुणं) मैथुन सेवन का (पच्चक्खामि) मैं प्रत्याख्यान करता हूं, (से) वह (दिव्वं वा) देव सम्बन्धी (माणुसं वा) मनुष्य सम्बन्धी (तिरिक्खजोणियं वा) तिर्यंचयोनि सम्बन्धी (मेहुणं) मैथुन (सयं) खुद (सेविज्जा) सेवन करे (नेव) नहीं, (अन्नेहिं) दूसरों के पास (मेहुणं) मैथुन (सेवाविज्जा) सेवन करावे (नेव) नहीं, (मेहुणं) मैथुन (सेवंते) सेवन करते हुए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरोंने कहा, इसलिये (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप मैथुन सेवन को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग से (न करेमि) नहीं करूं (न कारवेमि) नहीं कराऊं (करंतं) करते हुए (अन्नं पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझूं (भंते) हे ज्ञानसिन्धो ! (तस्स) भूतकाल में किये गये मैथुन सेवन की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोचना करूं (निंदामि) आत्म-साक्षी से निंदा करूं (गरिहामि) गुरु-साक्षि से गर्हा करूं (अप्पाणं) मैथुनसेवी आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं (भंते !) हे प्रभो ! (चउत्थे) चौथे (महव्वए) महाव्रत में (सव्वाओ) समस्त (मेहुणाओ) मैथुन सेवन

---

१ 'वा' शब्द से देव मनुष्य और तिर्यंचों के अवान्तर भेदों का भी स्वयं ग्रहण कर लेना चाहिये।

से (वेरमण) अलग होने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हू ।

अहावरे पचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमण सव्व भंते ! परिग्गह पच्चक्खामि । से अप्प वा बहु वा अणु वा थूल वा चित्तमत वा अचित्तमत वा नेव सय परिग्गह परिगिण्हिज्जा नेवऽन्नेहिं परिग्गह परिगिण्हावेज्जा परिग्गह परिगिण्हते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा । जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि पचमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ।

शब्दार्थ—(अह) इसके बाद (भंते) हे गुरो ! (अवरे) आगे के (पचमे) पाचवें (महव्वए) महाव्रत में (परिग्गहाओ) नवविध परिग्रह से (वेरमण) अलग होना जिनेश्वरोंने फरमाया है, अतएव (भंते !) हे कृपासागर ! (सव्व) समस्त (परिग्गह) परिग्रह का (पच्चक्खामि) मैं प्रत्याख्यान करता हू (से) वह (अप्प वा) अल्पमूल्य एरड–काष्ठ आदि (बहु वा) बहुमूल्य रत्न आदि (अणु वा) आकार से छोटे हीरा आदि (थूल वा) आकार से बडे हाथी आदि (चित्तमत वा) सजीव बालक बालिका आदि (अचित्तमत

---

१ वा शब्द से काष्ठ रत्न सचित्त अचित्त आदि के जुदे जुदे तज्जातीय भेद भी ग्रहण करना चाहिए ।

वा) निर्जीव वस्त्र आभरण आदि (परिग्गह) परिग्रह (सय) स्वयं (परिगिण्हिज्जा) ग्रहण कर (नेव) नहीं । अन्नेहिं) दूसरों से पास (परिग्गह) परिग्रह (परिगिण्हाविज्जा) ग्रहण करावें (नेव) नहीं (परिग्गह) परिग्रह (परिगिण्हंते) ग्रहण करते हुए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणे ज्जा) अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरोंने कहा। इस लिये (जावज्जीवाए) जीवन पर्यंत (तिविह) कृत कारित अनुमोदित रूप त्रिविध परिग्रह का ग्रहण (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएण) काया रूप (तिविहेण) तीन योग से (न करेमि) नहीं करूं (न कारवेमि) कराऊं नहीं (करंत) करते हुए (अन्न पि) दूसरे को भी (न समणुजाणामि) अच्छा समझूं नहीं (भंते!) हे प्रभो! (तस्स) भूतकाल में ग्रहण किये गये परिग्रह की (पडिकमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं (निंदामि) आत्म–साक्षी से निंदा करूं (गरिहामि) गुरुसाक्षी से गर्हा करूं (अप्पाणं) परिग्रहग्राही आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं (भंते!) हे गुरो! (पंचमे) पांचवें (महव्वए) महाव्रत में (सव्वाओ) समस्त (परिग्गहाओ) परिग्रह से (वेरमणं) अलग होने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हूं।

अहावरे छट्ठे भंते! वए राइभोयणाओ वेरमणं सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि। से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा नेव सयं राइं भुंजेज्जा नेवऽन्नेहिं राइं भुंजावेज्जा राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न

कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि छट्ठे भंते ! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं ।

शब्दार्थ—(अह) इसके बाद (भंते !) हे गुरो ! (अवरे) आगे के (छट्ठे) छठवें (वए) व्रत में (राइभोयणाओ) रात्रि–भोजन से (वेरमणं) अलग होना जिनेश्वरोंने फरमाया है, अतएव (भंते !) हे प्रभो ! (सव्व) समस्त (राइभोयणं) रात्रि–भोजन का (पच्चक्खामि) मैं प्रत्याख्यान करता हू (से) वह (असणं वा) पकाया हुआ अन्न, आदि (पाणं वा) आचारांगसूत्रोक्त उत्सेदिम आदि जल (खाइमं वा) खजूर आदि (साइमं वा) इलायची, लौंग, चूर्ण आदि (सयं) खुद (राइं) रात्रि में (भुंजिज्जा) खावे (नेव) नहीं। (अन्नेहिं) दूसरों को (राइं) रात्रिमें (भुंजाविज्जा) खवावे (नेव) नहीं (राइं) रात्रि में (भुंजते) खाते हुए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरोंने कहा। इसलिये (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं) कृत कारित अनुमोदित रूप त्रिविध रात्रि–भोजन को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग से (न करेमि) नहीं करू (न कारवेमि) नहीं कराऊ (करत) करते हुए (अन्न पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझू (भंते !)

१ 'वा' शब्द से प्रधान पान खादिम, स्वादिम के अवांतर तज्जातीय भेदों का भी ग्रहण करना चाहिये ।

हे भगवन् ! (तस्स) भूतकाल में किये गये रात्रि–भोजन की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करू (निंदामि) आत्म–साक्षी मे निंदा करू (गरिहामि) गुरु–साक्षी मे गर्हा करू (अप्पाणं) रात्रि–भोजन करनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करू (भंते !) हे प्रभो ! (छट्ठे) छठवें (वए) व्रत में (सव्वाओ) समस्त (राइभोयणाओ) रात्रि–भोजन से (वेरमणं) अलग होने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हू।

इच्चेयाइं पंचमहव्वयाइं राइभोयण वेरमण छट्ठाइं अत्तहियट्ठ-याए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ।

शब्दार्थ–(इच्चेयाइं) इत्यादि ऊपर कहे हुए (पंचमहव्व-याइं) पांच महाव्रतों (राइभोयणवेरमणछट्ठाइं) और छठवें रात्रि–भोजनविरमण व्रत को (अत्तहियट्ठयाए) आत्महित के लिये (उवसंपज्जित्ताणं) अंगीकार करके (विहरामि) संयमधर्म में विचरू ।

—श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामीने सभा के बीच में केवलज्ञान से समस्त वस्तु–तत्त्व को देख कर स्पष्ट रूप से कहा है कि साधु रात्रिभोजन सहित जीवहिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह, इन पांच आस्रवों को दुर्गतिदायक जान कर स्वयं आचरण न करे, दूसरों से आचरण न करावे और आचरण करनेवाले दूसरों को भी अच्छा नहीं समझे। इस प्रकार रात्रिभोजनविरमण सहित पांच महाव्रतों को आत्म–कल्याण के वास्ते अंगीकार करके संयम धर्म में विचरे। ऐसा सुधर्म स्वामीने जम्बूस्वामी से कहा ।

जम्बूस्वामी प्रतिज्ञा करते हैं कि हे भगवन् ! जिनेश्वरों की आज्ञा के अनुसार मैं रात्रिभोजन सहित पाचों आश्रवों का तीन करण, तीन योग से त्याग करता हू और भूतकाल में आचरण किये गये आश्रवों की आलोयणा रूप आत्मसाक्षि से निंदा तथा गुरसाक्षि से गर्हा और आश्रवसेवी आत्मा का त्याग करता हू । इस प्रकार रात्रिभोजन विरमण व्रत सहित पाच महाव्रतों को भले प्रकार स्वीकार करके सयमधर्म में विचरता हू ।

इसी तरह प्रतिज्ञा और रात्रिभोजनविरमणव्रत-सहित पाचों महाव्रत जिन्हों का स्वरूप ऊपर दिखाया गया है अगी कार करके दूसरे साधु साध्वियों को भी सयम धर्म में सावधानपने विचरना चाहिये ।

जीवों की जयणा रखने का उपदेश—

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजयविरयपडिहयपचक्खायपावकम्मे दिश्रा वा राश्रो वा एगश्रो वा परिसागश्रो वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, से पुढविं वा भित्तिं वा सिल वा लेलु वा ससरक्ख वा काय ससरक्ख वा वत्थ हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा, अन्न न आलिहाविज्जा न विलिहाविज्जा न घट्टाविज्जा न भिंदाविज्जा, अन्न आलिहत वा विलिहत वा घट्टत वा भिंदत वा न समणुजाणामि । जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि

करंत पि अन्न न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ—(से) पूर्वोक्त पंचमहाव्रतों के धारक (संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्मों को नष्ट करनेवाले (भिक्खू वा) साधु अथवा (भिक्खुणी वा) साध्वी (दिआ वा) दिवस में, अथवा (राओ वा) रात्रि में, अथवा (एगओ वा) अकेले, अथवा (परिसागओ वा) सभा में, अथवा (सुत्ते वा) सोते हुए, अथवा (जागरमाणे) जागते हुए (वा) और भी कोई अवस्था में (से) पृथ्वीकायिक जीवों की जयणा इस प्रकार करे कि-(पुढविं वा) खान की मिट्टी (भित्तिं वा) नदीतट की मिट्टी (सिलं वा) बड़ा पाषाण (लेलुं वा) पाषाण के टुकडे (ससरक्खं वा कायं) सचित्त रज से युक्त शरीर (ससरक्खं वा वत्थं) सचित्तरज से युक्त वस्त्र पात्र इत्यादि पृथ्वीकायिक जीवों को (हत्थेण वा) हाथों से अथवा (पाएण वा) पैरों से अथवा (कट्ठेण वा) काष्ठ से अथवा (किलिंचेण वा) काष्ठ के टुकडों से अथवा (अंगुलियाए वा) अंगुलियों से अथवा (सिलागाए वा) लोहा आदि के सीले से अथवा (सिलागहत्थेण) सीला आदि के समूह से (वा) दूसरे और भी कोई तज्जातीय

१ वा शब्द से खान आदि में तज्जातीय भेदों को भी ग्रहण करना। इसी तरह आगे के आलावाओं में भी अप्काय तेजस्काय वायु और वनस्पतिकाय के तज्जातीयभेदों को भी ग्रहण करना।

वस्तुओं से (न आलिहिज्जा) एकवार खणे नहीं (न विलिहिज्जा) अनेकवार खणे नहीं (न घट्टिज्जा) चलविचल करे नहीं (न भिंदिज्जा) छेदन भेदन करे नहीं अन्न) दूसरों के पास (न आलिहावेज्जा) एक वार खणावे नहीं (न विलिहावेज्जा) अनेक वार खणावे नहीं (न घट्टाविज्जा) चलविचल करावे नहीं (न भिंदाविज्जा) छेदन भेदन करावे नहीं (अन्न) दूसरों को (आलिहत वा) एकवार खणते हुए अथवा (विलिहत वा) अनेक वार खणते हुए अथवा (घट्टत वा) चल विचल करते हुए अथवा (भिंदत वा) छेदन भेदन करते हुए (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे नहीं ऐसा भगवानने कहा अतएव (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं) कृत, कारित अनुमोदित रूप पृथ्वीकाय सबन्धी त्रिविध हिंसा को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग से (न करेमि) नहीं करू (न कारवेमि) नहीं कराऊ (करत) करते हुए (अन्न पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझू (भंते) हे गुरो ! (तस्स) भूतकाल में की गई हिंसा की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करू (निंदामि) आत्म-साक्षी से निंदा करू (गरिहामि) गुरु-साक्षी से गर्हा करू (अप्पाणं) पृथ्वीकाय की हिंसा करनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करू।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा

सुत्ते वा जागरमाणे वा से उदग वा ओस वा हिम वा महिय वा करग वा हरितणुग वा सुद्धोदग वा उदउल्ल वा काय उदउल्ल वा वत्थ ससणिद्ध वा काय ससणिद्ध वा वत्थ न आमुसिज्जा न सफुसिज्जा न आवीलिज्जा न पवीलिज्जा न अक्खोडिज्जा न पक्खोडिज्जा न आयाविज्जा न पयाविज्जा, अन्न न आमुसाविज्जा न सफुसाविज्जा न आवीलाविज्जा न पवीलाविज्जा न अक्खोडाविज्जा न पक्खोडाविज्जा न आयाविज्जा न पयाविज्जा, अन्न आमुसत वा सफुसत वा आवीलत वा पवीलत वा अक्खोडत वा पक्खोडत वा आयावत वा पयावत वा न समणुजाणेज्जा । जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।

शब्दार्थ—(से) पूर्वोक्त पचमहाव्रतो के धारक (सजय-विरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) सयम युक्त, विविध तपस्याओ में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करने वाले (भिक्खू वा) साधु अथवा (भिक्खुणी वा) साध्वी (दिआ वा) दिवस में अथवा (राओ वा) रात्रि में (एगओ वा) अकेले अथवा (परिसागओ वा) सभा में अथवा (सुत्ते वा) सोते हुए अथवा (जागरमाणे) जागते हुए (वा) दूसरी और भी कोई अवस्था में (स) अप्कायिक–जीवों की जयणा इस प्रकार करे कि (उदग वा) बावडी, कुआ आदि के जल (ओस वा) ओस का जल (हिम वा) बर्फ

का जल (महिय वा) धूअर का जल (करग वा) ओरा का जल (हरितणुग वा) वनस्पति पर रहे हुए जल के कण (सुद्धोदग वा) वारीश का जल (उदउल्ल वा कायं) जल से भींजी हुई काया (उदउल्ल वा वत्थ) जल से भींजे हुए वस्त्र आदि (ससणिद्ध वा काय) जलबिन्दु रहित भींजी हुई काया (ससणिद्ध वा वत्थ) जल विन्दु रहित भींजे हुए वस्त्र आदि अप्काय को (न आमुसेज्जा) पूछे नहीं (न सफुसेज्जा) छूए नहीं (न आवीलिज्जा) एक वार पीडा देवे नहीं (न पवि लिज्जा) वार वार पीडा देवे नहीं (न अक्खोडिज्जा) एक वार झाटके नहीं (न पक्खोडिज्जा) वार वार झाटके नहीं (न आयाविज्जा) एक वार तपावे नहीं (न पयाविज्जा) वार वार तपावे नहीं (अन्न) दूसरों के पास (न आमुसाविज्जा) पूछावे नहीं (न सफुसाविज्जा) छुआवे नहीं (न आवी-लाविज्जा) एक वार पीडा देवावे नहीं (न पवीलाविज्जा) वार वार पीडा देवावे नहीं (न अक्खोडाविज्जा) एक वार झटकवावे नहीं (न पक्खोडाविज्जा) वार वार झटकवावे नहीं (न आयाविज्जा) एक वार तपवावे नहीं (न पयाविज्जा) वार वार तपवावे नहीं (अन्न) दूसरों को (आमुसत वा) पूछते हुए अथवा (सफुसत वा) छूते हुए अथवा (आवीलत वा) एक वार पीडा देते हुए अथवा (पवीलंत वा) वार वार पीड़ा देते हुए अथवा (अक्खोडत वा) एक वार झाट कते हुए अथवा (पक्खोडत वा) वार वार झाटकते हुए अथवा (आयावत वा) एक वार तपाते हुए अथवा (पयावत वा)

बार बार तपाते हुए (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे नहीं ऐसा भगवानने कहा, अतएव मैं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यंत (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप अप्कायिक त्रिविध हिंसा को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग से (न करेमि) नहीं करू (न कारवेमि) नहीं कराऊ (करत) करते हुए (अन्न पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझू (भंते !) हे प्रभो ! (तस्स) भूतकाल में की गई हिंसा की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करू (निंदामि) आत्म–साक्षी से निंदा करू (गरिहामि) गुरु–साक्षी से गर्हा करू (अप्पाणं) अप्काय की हिंसा करनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करू ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से अगणिं वा इंगालं वा मुम्मुरं वा अच्चिं वा जालं वा अलायं वा सुद्धागणिं वा उक्कं वा न उंजिज्जा न घट्टेज्जा न भिंदेज्जा न उज्जालेज्जा न पज्जालेज्जा न निव्वावेज्जा, अन्न न उंजावेज्जा न घट्टावेज्जा न भिंदावेज्जा न उज्जालावेज्जा न पज्जालावेज्जा न निव्वावेज्जा, अन्नं उंजंतं वा घट्टंतं वा भिंदंतं वा उज्जालंतं वा पज्जालंतं वा निव्वावंतं वा न समणुजाणेज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि

शब्दार्थ—(से) पूर्वोक्त पच महाव्रतों के धारक (संजय-विरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करने वाले (भिक्खू वा) साधु अथवा (भिक्खुणी वा) साध्वी (दिआ वा) दिवस में अथवा (राओ वा) रात्रि में अथवा (एगओ वा) अकेले अथवा (परिसागओ वा) सभा में अथवा (सुत्ते वा) सोते हुए अथवा (जागरमाणे) जागते हुए (वा) दूसरी और भी कोई अवस्था में (से) अग्निकायिक जीवों की जयणा इस प्रकार से करे कि (अगणिं वा) तपे हुए लोहे में स्थित अग्नि (इंगाल वा) अंगारों की अग्नि (मुम्मुर वा) भोभर की अग्नि (अर्चिं वा) दीपक आदि की अग्नि (जाल वा) ज्वाला की अग्नि (अलाय वा) जलते हुए काष्ट की अग्नि (सुद्धागणिं वा) काष्ठ रहित अग्नि (उक्क वा) उल्कापात विजुली आदि अग्निकाय को (न उंजिज्जा) ईंधनादि से सींचे[1] नहीं (न घट्टेज्जा) चलविचल करे नहीं (न भिंदेज्जा) छेदन भेदन करे नहीं (न उज्जालेज्जा) एक वार पवन आदि से उजारे नहीं (न पज्जालेज्जा) वार वार पवन आदि से उजारे नहीं (न निव्वावेज्जा) बुझावे नहीं (अन्न) दूसरों के पास (न उंजावेज्जा) ईंधनादि से सिंचावे नहीं (न घट्टावेज्जा) चलविचल करावे नहीं (न भिंदावेज्जा) छेदन भेदन करावे नहीं (न उज्जालावेज्जा)

१ आग में लकड वगैरह डाल नहीं २ हलाव नहीं ३ वायु या फूक देकर जलाव नहीं ४ आग के बडे खडो को तोडकर छोटे छोटे टुकडे कराव नहीं

(छिन्नपइट्ठेसु वा) कटी हुई वृक्ष-डाली पर रहे आसन आदि के ऊपर (सचित्तेसु वा) अडा आदि के ऊपर (सचित्तकोल पडिनिस्सिएसु वा) घुण आदि जन्तुयुक्त आसन आदि वस्तुओं के ऊपर (न गच्छेज्जा) गमन करे नहीं (न चिट्ठेज्जा) खडा रहे नहीं (न निसीएज्जा) बैठे नहीं (न तुअट्टेज्जा) सोवे नहीं (अन्न) दूसरों को (न गच्छावेज्जा) गमन करावे नहीं (न चिट्ठावेज्जा) खडा करावे नहीं (न निसीयावेज्जा) बैठावे नहीं (न तुअट्टावेज्जा) सोवावे नहीं (अन्न) दूसरों को (गच्छन्त वा) गमन करते हुए अथवा (चिट्ठन्त वा) खडा रहते हुए अथवा (निसीयन्त वा) बैठते हुए अथवा (तुअट्टन्त वा) सोते हुए और तरह से भी वनस्पतिकाय की हिंसा करते हुए (न समणुजाणेज्जा) अच्छा नहीं समझे ऐसा भगवानने कहा, अतएव में (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविह) कृत, कारित, अनुमोदित रूप वनस्पतिकायिक त्रिविध हिंसा को (मणेण) मन (वायाए वचन (काएण) काया रूप (तिविहेण) तीन योग से (न करेमि) नहीं करू (न कारवेमि) नहीं कराऊ (करन्त) करते हुए (अन्न पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझू (भंते) हे प्रभो ! (तस्स) भूतकाल में का गई हिंसा की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करू (निंदामि) आत्म-साक्षी से निंदा करू (गरिहामि) गुरु-साक्षी से गर्हा करू (अप्पाण) वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करू।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खा यपावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयंग वा कुंथु वा पिपीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुच्छ-णंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उडगंसि वा दंड-गंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जगंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणेज्जा नोणं संघायमावज्जेज्जा ।

शब्दार्थ—(से) पूर्वोक्त पांच महाव्रतों के धारक (संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करने वाले (भिक्खू वा) साधु अथवा (भिक्खुणी वा) साध्वी (दिआ वा) दिवस में अथवा (राओ वा) रात्रि में अथवा (एगओ वा) अकेले अथवा (परिसागओ वा) सभा में अथवा (सुत्ते वा) सोते हुए अथवा (जागरमाणे) जागते हुए (वा) दूसरी और भी कोई अवस्था में (से) त्रसकायिक जीवों की रक्षा इस प्रकार करे कि (कीडं वा)

---

१ 'वा' शब्द से सामान्य विशेष साधु साध्वी का ग्रहण करना, २ 'वा' शब्द से कीट, पतंग कुन्थु कीडी आदि में सभी जातियों को ग्रहण करना चाहिये ।

(छिन्नपइट्ठेसु वा) कटी हुई वृक्ष-डाली पर रहे आसन आदि के ऊपर (सचित्तेसु वा) अंडा आदि के ऊपर (सचित्तकोल पडिनिस्सिएसु वा) घुण आदि जन्तुयुक्त आसन आदि वस्तुओं क ऊपर (न गच्छेज्जा) गमन करे नहीं (न चिट्ठेज्जा) खड़ा रहे नहीं (न निसीएज्जा) बैठे नहीं (न तुअट्टेज्जा) सोवे नहीं (अन्न) दूसरों को (न गच्छावेज्जा) गमन करावे नहीं (न चिट्ठावेज्जा) खड़ा करावे नहीं (न निसीयावेज्जा) बैठावे नहीं (न तुअट्टावेज्जा) सोवावे नहीं (अन्न) दूसरों को (गच्छन्त वा) गमन करते हुए अथवा (चिट्ठन्त वा) खड़ा रहते हुए अथवा (निसीयन्त वा) बैठते हुए अथवा (तुअट्टन्त वा) सोते हुए और तरह से भी वनस्पतिकाय की हिंसा करते हुए (न समणुजाणेज्जा) अच्छा नहीं समझे ऐसा भगवानने कहा, अतएव मैं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप वनस्पतिकायिक त्रिविध हिंसा को (मणेणं) मन (वायाए वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग स (न करेमि) नहीं करू (न कारवेमि) नहीं कराऊ (करन्त) करते हुए (अन्न पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझू (भंते) हे प्रभो ! (तस्स) भूतकाल में की गई हिंसा की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करू (निंदामि) आत्म-साक्षी से निंदा करू (गरिहामि) गुरू-साक्षी से गर्हा करू (अप्पाणं) वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करू ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयगं वा कुंथुं वा पिपीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुञ्छ-णंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उडगंसि वा दंड-गंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणेज्जा नोणं संघायमावज्जेज्जा ।

शब्दार्थ—(से) पूर्वोक्त पांच महाव्रतों के धारक (संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करने वाले (भिक्खू वा) साधु अथवा (भिक्खुणी वा) साध्वी (दिआ वा) दिवस में अथवा (राओ वा) रात्रि में अथवा (एगओ वा) अकेले अथवा (परिसागओ वा) सभा में अथवा (सुत्ते वा) सोते हुए अथवा (जागरमाणे) जागते हुए (वा) दूसरी और भी कोई अवस्था में (से) त्रसकायिक जीवों की रक्षा इस प्रकार करे कि (कीडं वा)

---

१ 'वा' शब्द से सामान्य विशेष साधु साध्वी का ग्रहण करना २ 'वा' शब्द से कीट, पतंग, कुन्थु, कीडी आदि में सभी जातियों को ग्रहण करना चाहिये।

(छिन्नपडट्ठेसु वा) कटी हुई वृक्ष–डाली पर रहे आसन आदि के ऊपर (सचित्तेसु वा) अडा आदि के ऊपर (सचित्तकोल पडिनिस्सिएसु वा) घुण आदि जन्तुयुक्त आसन आदि वस्तुओं के ऊपर (न गच्छेज्जा) गमन करे नहीं (न चिट्ठेज्जा) खडा रहे नहीं (न निसीएज्जा) बैठे नहीं (न तुअट्टेज्जा) सोवे नहीं (अन्न) दूसरा को (न गच्छावेज्जा) गमन करावे नहीं (न चिट्ठावेज्जा) खडा करावे नहीं (न निसीयावेज्जा) बैठावे नहीं (न तुअट्टाविज्जा) सोवावे नहीं (अन्न) दूसरों को (गच्छत वा) गमन करते हुए अथवा (चिट्ठत वा) खडा रहते हुए अथवा (निसीयत वा) बैठते हुए अथवा (तुअट्टत वा) सोते हुए और तरह से भी वनस्पतिकाय की हिंसा करते हुए (न समणुजाणेज्जा) अच्छा नहीं समझे ऐसा भगवानने कहा, अतएव मैं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविह) कृत, कारित, अनुमोदित रूप वनस्पतिकायिक त्रिविध हिंसा को (मणेण) मन (वायाए वचन (काएण) काया रूप (तिविहेण) तीन योग से (न करेमि) नहीं करू (न कारवेमि) नहीं कराऊ (करत) करते हुए (अन्न पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझू (भते) हे प्रभो ! (तस्म) भूतकाल में की गई हिंसा की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करू (निंदामि) आत्म–साक्षी से निंदा करू (गरिहामि) गुरु–साक्षी से गर्हा करू (अप्पाण) वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करू ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजयविरयपडिहयपच्चक्खा पपावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयगं वा कुंथुं वा पिपीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुच्छ- णंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उंडगंसि वा दंड- गंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जगंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ सजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणेज्जा नोणं संघायमावज्जेज्जा ।

शब्दार्थ—(से) पूर्वोक्त पांच महाव्रतों के धारक (सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करने वाले (भिक्खू वा) साधु अथवा (भिक्खुणी वा) साध्वी (दिआ वा) दिवस में अथवा (राओ वा) रात्रि में अथवा (एगओ वा) अकेले अथवा (परिसागओ वा) सभा में अथवा (सुत्ते वा) सोते हुए अथवा (जागरमाणे) जागते हुए (वा) दूसरी और भी कोई अवस्था में (से) त्रसकायिक जीवों की रक्षा इस प्रकार करे कि (कीडं वा)

---

१ 'वा' शब्द से सामान्य विशेष साधु साध्वी का ग्रहण करना, २ 'वा' शब्द से कीट, पतंग कुन्थु कीडी आदि में सभी जातियों को ग्रहण करना चाहिये।

कीट (पयग वा) पतग (कुथ वा) कुन्थु (पिपीलिय वा) कीड़ी आदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों को (हत्थसि वा) हाथों पर अथवा (पायसि वा) पैरों पर अथवा (बाहुसि वा) भुजाओं पर अथवा (ऊरुसि वा) जघाओं पर अथवा (उदरसि वा) पेट पर अथवा (सीससि वा) मस्तक पर अथवा (वत्थसि वा) वस्त्रों में अथवा (पडिग्ग हसि वा) पात्रों में अथवा (कबलसि वा) कबलियों में अथवा (पायपुन्छणसि वा) पैरों के पूछने के कम्बल खड में या दडासन में अथवा (रयहरणसि वा) ओघाओं में अथवा (गोच्छगसि वा) गुच्छाओं में अथवा (उडगसि वा) मातरिया, या स्थडिल में अथवा (दडगसि वा) दडाओं पर अथवा (पीढगसि वा) बाजोटों में अथवा (फलगसि वा) पाटों में अथवा (सेज्जगसि था) शय्या, वसति आदि में अथवा (सथारगसि वा) सथारा में (अन्नयरसि वा) दूसरे और भी (तहप्पगारे) साधु साध्वी योग्य (उवगरणजाए) उपकरण समुदाय में रहे हुए (तओ) हाथ आदि स्थानों से (सजयामेव) जयणा पूर्वक ही (पडिलेहिय पडिलेहिय) वार वार देख, और (पमज्जिय पमज्जिय) पूज पूज करके (एगत) एकान्त स्थान पर (अवणेज्जा) छोड़ देवे, परन्तु (नो ण सघायमावज्जेज्जा) त्रसकायिक जीवों को पीडा देवे नहीं ।

—हे आयुष्मन् ! जम्बू ! भगवान् श्रीमहावीरस्वामीने बारह प्रकार की सभा में बैठ कर फरमाया है कि—पाच महा-

व्रतों के पालक, सप्तदशविध-संयम के धारक, विविध तप त्यागों के करने और प्रत्याख्यान से पापकर्मों को हटाने वाले साधु अथवा साध्वी दिन में या रात्रि में, अकेले या सभा में, सोते या जागते हुए, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन जीवों की जयणा खुद करे, दूसरों को जयणा रखने का उपदेश देने और जयणा रखने वाले को अच्छा समझे।

पट्कायिक जीवों की हिंसा खुद न करे, दूसरों के पास हिंसा न करावे और हिंसा करनेवालों को अच्छा न समझे। भूतकाल में जो षट्कायिक जीवों की हिंसा की गई है उसकी आलोयणा करे, निन्दा करे और पापकारक आत्मा का त्याग करे। इस प्रकार ज्ञपरिज्ञा से प्रतिज्ञा कर के संयमधर्म को अच्छी तरह पालन करे।

जम्बूस्वामी कहते हैं कि हे भगवन्[1] पट्कायिकजीवों की जयणा (रक्षा) करने का स्वरूप जो आपने ऊपर दिखलाया है उस मुताबिक मैं खुद पालन करूंगा, दूसरों से पालन कराऊंगा और पालन करनेवालों को अच्छा समझूंगा। पट्कायिकजीवों की हिंसा खुद नहीं करूंगा, दूसरों के पास नहीं कराऊंगा और हिंसा करनेवालों को अच्छा नहीं समझूंगा। भूतकाल में बिना उपयोग से जो हिंसा हो चुकी है उसकी आत्मा और गुरु की साख से निन्दा करता हूं और उस

---

१ दीक्षा लिए पहले क समय में।

पाप करनेवाले आत्म–परिणाम को हमेशा के लिये छोड़ता हूँ। यह प्रतिज्ञा एक दो दिन के लिये ही नहीं, किन्तु जीवित पर्यन्त के लिये करता हूं।

दूसरे आत्मार्थी मोक्षाभिलाषुक साधु साध्वियों को भी उपरोक्त प्रकार से षट्कायिक जीवों की जयणा करते हुए ही संयम–धर्म में बरतना चाहिये। क्योंकि हर एक जीवों पर दया रखना यही पारमार्थिक मार्ग है।

जयणा और विहार आदि करने का उपदेश—

अजयं चरमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं ॥ १ ॥

शब्दार्थ—(अजयं) ईर्यासमिति का उल्लंघन करके (चरमाणो) गमन करता हुआ साधु (पाणभूयाइं) एकेन्द्रिय आदि जीवों की (हिंसइ) हिंसा करता है (य) और (पावयं कम्मं) ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को (बंधइ) बांधता है (से) उस (तं) पापकर्म का (कडुअं फलं) कडुआ फल (होइ) होता है।

अजयं चिट्ठमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं ॥ २ ॥

शब्दार्थ—(अजयं) ईर्यासमिति का उल्लंघन करके

---

१ जीव–स्वभाव २ सदा के लिये ३ जीता रहूं जहां तक ४ संयम की इच्छा करनेवाले ५ मोक्ष जाने की इच्छा रखनेवाले ६ असली मोक्षमार्ग ७ नाश

(चिट्ठमाणो) खड़ा रहता हुआ साधु (पाणभूयाइ) एकेन्द्रिय आदि जीवों की (हिंसइ) हिंसा करता है (य) और (पावय कम्म) ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को (बंधइ) बांधता है (से) उस (तं) पापकर्म का (कडुअ फल) कड़ुआ फल (होइ) होता है।

अजय आसमाणो य, पाणभूयाइ हिंसइ।
बंधइ पावय कम्म, तं से होइ कडुअ फल ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—(अजय) ईर्यासमिति का उल्लंघन करके (आसमाणो) बैठता हुआ साधु (पाणभूयाइ) एकेन्द्रिय आदि जीवों की (हिंसइ) हिंसा करता है (य) और (पावय कम्म) ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को (बंधइ) बांधता है (से) उस (तं) पापकर्म का (कडुअ फल) कड़ुआ फल (होइ) होता है।

अजय सयमाणो य, पाणभूयाइ हिंसइ।
बंधइ पावय कम्म, तं से होइ कडुअ फल ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—(अजय) ईर्यासमिति का उल्लंघन करके (सयमाणो) शयन करता हुआ साधु (पाणभूयाइ) एकेन्द्रिय आदि जीवों की (हिंसइ) हिंसा करता है (य) और (पावय कम्म) ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को (बंधइ) बांधता है (से) उस (तं) पापकर्म का (कडुअ फल) कड़ुआ फल (होइ) होता है।

अजय भुंजमाणो य, पाणभूयाइ हिंसइ।
बंधइ पावय कम्म, तं से होइ कडुअ फल ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—(अजय) एषणा समिति का उल्लंघन करके (भुञ्जमाणो) भोजन करता हुआ साधु (पाणभूयाइ) एके न्द्रिय आदि जीवों की (हिंसइ) हिंसा करता है (य) और (पावय कम्म) ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को (बधइ) बाधता है (से) उस (त) पापकर्म का (कडुअ फल) कडुआ फल (होइ) होता है।

अजय भासमाणो य, पाणभूयाइ हिंसइ।
बधइ पावय कम्म, त से होइ कडुअ फल ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—(अजय) भाषासमिति का उल्लंघन करके (भासमाणो) बोलता हुआ साधु (पाणभूयाइ) एकेन्द्रिय आदि जीवों की (हिंसइ) हिंसा करता है (य) और (पावय कम्म) ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को (बधइ) बाधता है (से) उस (त) पापकर्म का (कडुअ फल) कडुआ फल (होइ) होता है।

—साधु अथवा साध्वी इर्यासमिति का उल्लंघन करके अजयणा से गमन करते, खडे रहते, बैठते, शयन करते, एषणा समिति का उल्लंघन करके अयत्ना से भोजन करते, और भाषा समिति का उल्लंघन करके अयत्ना से बोलते हुए एकेन्द्रिय आदि जीवों की हिंसा करते हैं और ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों

१ नाश ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय वेदनीय मोहनीय नामकर्म, गोत्र कर्म अन्तरायकर्म और आयुष्यकर्म ये आठ कर्म हैं। इनमें नाम गोत्र वेदनीय आयु ये चार भवोपग्राही कर्म कहाते हैं।

का बांधते हैं, और उन पापकर्मों का संसार में परिभ्रमण रूप कड़ुआ फल मिलता है।

कह चरे ? कह चिट्ठे ?, कहमासे ? कह सए ? ।
कह भुंजतो भासतो ?, पावकम्म न बंधइ ? ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—(कह) किस प्रकार (चरे) गमन करे ? (कह) किस प्रकार (चिट्ठे) खड़ा रहे ? (कह) किस प्रकार (आसे) बैठे ? (कह) किस प्रकार (सए) शयन करे ? (कह) किस प्रकार (भुंजतो) भोजन करता, और (भासतो) बोलता हुआ (पावकम्म) पापकर्म को (न बंधइ) नहीं बांधता ?

—जम्बूस्वामी पूछते हैं कि हे भगवन ! किस प्रकार चलते, बैठते, खड़े रहते, सोते, भोजन करते और बोलते हुए साधु साध्वी पाप-कर्म को नहीं बांधते हैं ?—

जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जय सए ।
जय भुंजतो भासतो, पावकम्म न बंधइ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—(जय) जयणा से (चरे) गमन करते (जय) जयणा से (चिट्ठे) खड़े रहते (जयमासे) जयणा से बैठते (जय) जयणा से (सए) सोते (जय) जयणा से (भुंजतो) भोजन करते और जयणा से (भासतो) बोलते हुए (पावकम्म) पापकर्म को (न बंधइ) नहीं बाँधते हैं।

—सुधर्मस्वामी फरमाते हैं कि हे जम्बू ! ईर्यासमिति सहित जयणा से गमन करते, खड़े रहते, बैठते, सोते हुए,

एषणासमिति सहित जयणा से भोजन करते हुए और भाषा-समिति सहित जयणा से परिमित बोलते हुए पाप-कर्म का बन्ध नहीं होता ।

सव्वभूयप्पभूअस्स, सम्म भूयाइ पासओ ।
पिहिआसवस्स दतस्स पावकम्म न बधइ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—(सव्वभूयप्पभूअस्स) सभी जीवों को आत्मा के समान समझने वाले (सम्म) अच्छे प्रकारसे (भूयाइ) समस्त प्राणियों को (पासओ) देखने वाले (पिहिआसवस्स) आश्रवद्वारों को रोकनेवाले (दतस्स) इन्द्रियों को दमने वाले साधु साध्वियों को (पावकम्म) पापकर्म का (न बधइ) बन्ध नहीं होता है ।

—जो साधु साध्वी आश्रवद्वारों को रोकने, इन्द्रियों को दमने, सभी जीवों को आत्मा के समान समझने और देखने वाले हैं उनको पापकर्म का बध नहीं होता ।

पढम नाण तओ दया, एव चिट्ठइ सव्वसजए ।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेयपावग ॥ १० ॥

शब्दार्थ—(पढम) पहले (नाण) जीव, अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञान (तओ) उसके बाद (दया) सयम रूप क्रिया है (एव) इस प्रकार ज्ञान और क्रिया स (चिट्ठए) रहता हुआ साधु (सव्वसजए) सर्व प्रकार से सयत होता है (अन्नाणी) जीव अजीव आदि तत्त्वज्ञान से रहित साधु

(किं काही) क्या करेगा (वा) अथवा (सेयपावग) पुण्य और पाप को (किं नाही) क्या समझेगा ?

—पहले ज्ञान और बाद में दया याने सयम रूप क्रिया से युक्त साधु सभी प्रकार से सयत कहलाता है। ज्ञानक्रिया से रहित साधु पुण्य और पाप के स्वरूप को नहीं जान सकता।

सोचा जाणइ कल्लाण, सोचा जाणइ पावग।
उभयपि जाणइ सोचा, ज सेय त समायरे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—(सोचा) आगमों को सुन करके (कल्लाण) सयम के स्वरूप को (जाणइ) जानता है (सोचा) आगमों को सुन करके (पावग) असयम के स्वरूप को (जाणइ) जानता है (सोचा) आगमों को सुन करके (उभय पि) सयम और असयम को (जाणए) जानते हुए साधु (ज) जो (सेय) आत्म हितकारी हो (त) उसको (समायरे) आचरण करे।

—जिनेश्वर प्ररूपित आगमों के सुनने से कल्याणकारी और पापकारी मार्ग का ज्ञान होता है और दोनों मार्गों का ज्ञान होने बाद जो मार्ग अच्छा मालूम पड़े उसको स्वीकार कर लेना चाहिये।

जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणइ।
जीवाजीवे अयाणतो, कह सो नाहीइ सजम ॥ १२॥

शब्दार्थ—(जो) जो पुरुष (जीवे वि) एकेन्द्रिय

आदि जीवों को भी (न याणेइ) नहीं जानता है (अजीवे वि) अजीव पदार्थों को भी (न याणइ) नहीं जानता है (सो) वह पुरुष (जीवाऽजीव) जीव अजीव को (अयाणतो) नहीं जानता हुआ (सयम) सत्तरहविध सयम को (कह) किस प्रकार (नाहीइ) जानेगा ?

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणइ ।
जीवाऽजीवे वियाणतो, सो हु नाहीइ सजम ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—(जो) जो पुरुष (जीवे वि) एकेन्द्रिय आदि जीवों को भी (वियाणेइ) विशेषरूप से जानता है (अजीवे वि) अजीव पदार्थों को भी (वियाणइ) विशेष रूप से जानता है (सो) वह पुरुष (जीवाऽजीवे) जीव अजीव के स्वरूप को (वियाणतो) अच्छी तरह से जानता हुआ (सजम) सत्तरहविध-सयम को (हु) निश्चय से (नाहीइ) जानेगा ।

—जो पुरुष जीव और अजीव द्रव्य के स्वरूप को नहीं जानता वह सयम के स्वरूप को भी किसी प्रकार से नहीं जान सकता और जो जीव तथा अजीव द्रव्य को अच्छी रीति से जानता है वही सयम के स्वरूप को जान सकता है। मतलब यह कि जीव अजीव द्रव्यों के रहस्य को समझने वाला पुरुष ही सयम की वास्तविकता को भले प्रकार समझ सकता है।

जया जीवमजीवे य, दोवि एए वियाणइ ।
तया गइ बहुविह, सव्वजीवाण जाणइ ॥ १४ ॥

जया गइ बहुविह, सव्वजीवाण जाणइ ।
तया पुण्ण च पाव च, बध मोक्ख च जाणइ ।।१५।।

शब्दार्थ—(जया) जब (जीव) जीव (य) और (अजीवे) अजीव (एए) इन (दोवि) दोनों को ही (वियाणइ) जानता है (तया) तब (सव्वजीवाण) समस्त जीवों की (बहुविह) नाना प्रकार की (गइ) गति को (जाणइ) जानता है, १४ (जया) जब (सव्वजीवाण) समस्तजीवों की (बहुविह) नाना प्रकार की (गइ) गति को (जाणइ) जानता है, (तया) तब (पुण्ण च) पुन्य और (पाव च) पाप (बध) बन्ध (च) और (मोक्ख) मोक्ष को (जाणइ) जानता है ।

—जीव, अजीव के स्वरूप को भले प्रकार जान लेने से उनकी नाना प्रकार की गतियों का ज्ञान होता है और उनसे पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष आदि तत्त्वों का जानपना होता है ।

जया पुण्ण च पाव च, बध मोक्ख च जाणइ ।
तया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ॥ १६ ॥
जया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।
तया चयइ सजोग, सब्भितर च बाहिर ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—(जया) जब (पुण्ण च) पुण्य और (पाव

---

१ धर्मास्तिकाय—जो चलने में सहायक है, अधर्मास्तिकाय—जो स्थिर रहने में सहायक है आकाशास्तिकाय—जो अवकाशदायक है पुद्गलास्तिकाय—जो सडन पडन विध्वसन है, काल—जो नये को जूना व जूने को नया करने वाला है, ये पाच द्रव्य अजीव

प) पाप (च) और (बंधमोक्खं) बन्ध, मोक्ष आदि तत्त्वों को (जाणइ) जानता है (तया) तब (जे) जो (दिव्वे) देवसम्बन्धी (जे) जो (माणुसे) मनुष्य सम्बन्धी (य) और तिर्यंच सम्बन्धी (भोए) भोग हैं, उनको (निव्विंदए) असार जानता है १६, (जया) जब (जे) जो (दिव्वे) देवसम्बन्धी (जे) जो (माणुसे) मनुष्य सम्बन्धी (य) और तिर्यंच सम्बन्धी (भोए) भोग हैं उनको (निव्विंदए) असार जानता है (तया) तब (सब्भिंतर च) राग, द्वेष आदि अभ्यन्तर सहित (बाहिर) पुत्र, कलत्र आदि बाह्य (संजोग) संयोगों को (चयइ) छोड़ता है।

—पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष आदि तत्त्वों का ज्ञान हासिल प्राप्त होने से मनुष्य, देव, मानव और तिर्यंच सम्बन्धी भोग विलासों को तुच्छ समझता है। ऐसी समझ हो जाने से बाह्य और आभ्यन्तर संयोगों का त्याग करता है।

जया चयइ संजोग, सब्भिंतर च बाहिरं।
तया मुंडे भवित्ताणं पव्वइए अणगारियं ॥ १८ ॥
जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं।
तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—(जया) जब (सब्भिंतर च) आभ्यन्तर सहित (बाहिर) बाह्य (संजोग) संयोगों को (चयइ) छोड़ता है (तया) तब (मुंडे) द्रव्य भाव से ... दीक्षित (भवित्ताणं) हो करके (अणगारियं)

(पव्वइए) अंगीकार करता है १८, (जया) जब (मुंडे) द्रव्य भाव से मुंडित (भवित्ताण) हो करके (अणगारिय) साधुपन को (पव्वइए) अंगीकार करता है (तया) तब (संवरमुक्किट्ठं) उत्तम संवरभाव और (अणुत्तर) सर्वोत्तम (धम्म) जिनेन्द्रोक्त धर्म को (फासे) फरसता है।

—आभ्यन्तर और बाह्य सयोगों का त्याग करने से मनुष्य, द्रव्य भाव से मुंडित हो कर यानी दीक्षा लेकर साधु होता है और साधु होकर उत्तम संवर और सर्वोत्तम जिनेन्द्रोक्त धर्म को फरसता है। मतलब यह कि साधु होने बाद ही मनुष्य, उत्तम संवरभाव और धर्म को प्राप्त करता है।

जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं ॥ २० ॥
जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं।
तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—(जया) जब (संवरमुक्किट्ठं) उत्तम संवर भाव और (अणुत्तर) सर्वोत्तम (धम्म) जिनेन्द्रोक्त धर्म को (फासे) फरसता है (तया) तब (अबोहिकलुसं कडं) मिथ्यात्व आदि से किये हुए (कम्मरयं) कर्म-रज को (धुणइ) साफ करता है २०, (जया) जब (अबोहिकलुसं कडं) मिथ्यात्व आदि से किये हुए (कम्मरयं) कर्म-रज को (धुणइ) साफ करता है (तया) तब (सव्वत्तगं) लोकाऽलोकव्यापी (नाणं) ज्ञान (च) और (दंसणं) दर्शन को (अभिगच्छइ) प्राप्त करता है।

—उत्तम संवरभाव और जिनेन्द्रोक्त धर्म की स्पर्शना होने से मनुष्य, मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग आदि से संचित की हुई कर्म रूप धूली को साफ करता है और बाद में उसको केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त होता है।

जया सव्वत्तग नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली॥ २२॥

जया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरुभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ॥ २३॥

शब्दार्थ—(जया) जब (सव्वत्तग) लोकाऽलोक व्यापी (नाणं) ज्ञान (च) और (दंसणं) दर्शन को (अभिगच्छइ) प्राप्त करता है (तया) तब (जिणो) रागद्वेष को जीतनेवाला (केवली) केवलज्ञानी पुरुष (लोग) चउदह राज प्रमाण लोक को (च) और (अलोग) अलोकाकाश को (जाणइ) जानता है २२ (जया) जब (जिणो) राग द्वेष को जीतनेवाला (केवली) केवलज्ञानी पुरुष (लोग) लोक (च) और (अलोग) अलोक को (जाणइ) जानता है। (तया) तब (जोगे) मन वचन काय इन तीन योगों को (निरुभित्ता) रोक करके भवोपग्राही कर्मांशो के विनाशार्थ (सेलेसिं) शैलेशी अवस्था को (पडिवज्जइ) स्वीकार करता है।

—लोकालोक व्यापी केवलज्ञान और केवलदर्शन पैदा होने से मनुष्य चउदह राज प्रमाण लोक और अलोकाकाश को

और उसमें रहे हुए समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् जानता और देखता है। चउदह राज प्रमाण लोक और अलोकाकाश को जानने, देखने बाद भवोपग्राही कर्मांशों का नाश करने के लिये केवलज्ञानी पुरुष मानसिक वाचिक और कायिक योगों का रोक कर शैलेशी (निष्प्रकम्प) अवस्था को धारण करता है।

जया जोगे निरुभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्म खवित्ताण, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥ २४ ॥
जया कम्म खवित्ताण, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—(जया) जब (जोगे) मन वचन काया इन तीन योगों को (निरुभित्ता) रोक करके (सेलेसिं) शैलेशी अवस्था को (पडिवज्जइ) स्वीकार करता है (तया) तब (कम्म) भवोपग्राही कर्मों को (खवित्ताण) खपा करके (नीरओ) कर्मरज से रहित पुरुष (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) जाता है २४, (जया) जब (कम्म) कर्मों को (खवित्ताण) खपा करके (नीरओ) कर्मरज से रहित पुरुष (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) जाता है (तया) तब (लोगमत्थयत्थो) लोक के ऊपर स्थित (सासओ) सदा शाश्वत (सिद्धो) सिद्ध (हवइ) होता है।

—योगों को रोक कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त करने से मनुष्य, भवोपग्राही कर्मरज से रहित होकर मोक्ष में विराजमान होता है और लोक के ऊपर रहा हुआ सदा शाश्वत सिद्ध बन जाता है।

इस प्रकार चौथे अध्ययन में कही गई (छज्जीवणियं) षट् कायिक जीवों की (कम्मुणा) मन वचन, काय इन योग सम्बन्धी अशुभ क्रिया से (न विराहिज्जासि) विराधना नहीं करे (त्ति) ऐसा (बेमि) मैं अपनी बुद्धि से नहीं, किन्तु तीर्थंकर आदि के उपदेश से कहता हूं।

—हमेशा जयणा में वर्त्तने वाले सम्यग्दृष्टि पुरुष अत्यन्त दुर्लभ चारित्र-रत्न को पाकर चौथे अध्ययन में बत लाई हुई षड्जीवनिकाय सम्बन्धी जयणा की मन वचन काय से विराधना नहीं करे।

आशय यह है कि-साधु अथवा साध्वी चौथे अध्ययन में कहे अनुसार पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन षड्जीवनिकाय की जयणा खुद रक्खे, दूसरों के पास जयणा रखावे और जयणा रखने वालों को मन वचन काय इन तीन योगों से अच्छा समझे, लेकिन षड्जीवनिकाय की किसी प्रकारसे विराधना नहीं करे।

आचार्य श्रीशय्यंभवस्वामी फरमाते हैं कि हे मनक ! षड् जीवनिकाय का स्वरूप और उसकी जयणा रखने का उपदेश जैसा भगवान श्रीमहावीरस्वामीने सुधर्मस्वामी को और सुधर्म स्वामीने अन्तिम केवली जम्बूस्वामी को कहा, उसी प्रकार मैं तुम को कहता हूं।

इति षड्जीवनिका नामकचतुर्थमध्ययन समाप्तम्।

—※—